सीताराम • • सीताराम • • सीताराम

श्रीमैथिली रमणो विजयते

• श्रीमन्मारुतनन्दनाय नमः •

• श्रीमते भगवते श्रीरामानन्दाचार्याय नमः •

श्रीसीताराम-तत्त्व-प्रकाश

नाम-रूप-लीला-धामात्मक

पूर्वार्ध

संग्रहकर्त्ता तथा प्रकाशक
' सीताशरण '

सीताराम • • सीताराम • • सीताराम

❀ ॐ गं गुरवे नमः ❀

❀ श्रीमैथिली रमणो विजयते ❀

❀ श्रीमन्मारुतनन्दनायनमः ❀

❀ श्रीमतेभगवते जगतगुरु श्रीरामानन्दाचार्यायनमः ❀

* श्रीसीताराम-तत्त्वप्रकाश *

नाम, रूप, लीला, धामात्मक--पूर्वार्द्ध

संग्रहकर्ता लेखक एवं प्रकाशकः-

अनन्त श्रीस्वामी अग्रदेवाचार्य वंशावतंश

अनन्त श्रीजानकीशरणजी महाराज "मधुकर"

तच्चरणारविन्द भ्रमर

सीताशरण

श्रीचारुशीला मन्दिर, श्री चारुशीला बाग, श्रीजानकीघाट,

श्रीअयोध्याजी-फैजाबाद (उ०-प्र०)

प्रथम संस्करण
१०२५ प्रति

माघकृष्ण सप्तमी श्रीरामानन्द जयन्ती
सं० २०३२ वि० सन् १९७६ ई०

न्यौछावर
१५) रु०

मुद्रक :- मनीराम प्रिंटिंग प्रेस, श्रीअयोध्याजी ।

जिसकी याचना की है उसके लिये क्या कहना है अर्थात् वह सब हमने सौंप दिया। इस पदसमुदाय से श्रीरामजी को महादानी तथा श्रीराम स्तवराज के पाठकों को श्रीरामजी की प्रसन्नता द्वारा वाञ्छितार्थ की पूर्ति अभिव्यक्त की गई ॥ ८२ ॥

श्रीनारदउवाच---वरं न याचे रघुनाथ युष्मत्पादाब्जभक्तिः सततं ममास्तु।
इदं प्रियं नाथ वरं प्रयच्छ पुनः पुनस्त्वामिदमेव याचे ॥ ८३ ॥

श्रीनारदजी ने कहा--

रघुनाथ = हे रघुनाथ। वरम् = राज्य, ऐश्वर्य काम भोगादि रूप वरदान को। न याचे = मैं नहीं माँग रहा हूँ। युष्मत्पादाब्जभक्तिः = आपके चरणकमल की भक्ति (अनुरक्ति)। सततम् = सर्वदा (अविच्छिन्न) मम = मुझको। अस्तु = होवे। इदम् = यही (त्वच्चरणकमलानुरागरूप) प्रियम् = आह्लाद करने वाला। नाथ = हे स्वामिन। वरम् = वरदान को। प्रयच्छ = दीजिये। पुनः पुनः = बार बार। इदमेव = इसी को। याचे = माँगता हूँ ॥८३

विशेष :---श्रीनारदजी अन्य वरदान को भक्ति का विरोधी जानकर अन्य विषय में विराग प्रदर्शन करते हुये अपने अभीष्ट की ही याचना की। इसलिये कहा श्रीनारद उवाच। हे रघुनाथ = आप नाथ अर्थात् याच्ञापूरक हैं, मेरी याचना आपके द्वारा ही पूर्ण हो सकती है, जिस वस्तु का जो स्वामी है वही उसका यथेष्ट विनियोग कर सकता है अतः अर्चन, बन्दन, पादसंवाहनादि लक्षण भक्ति अपने चरणकमलों में निरवच्छिन्न सर्वदा अनुवर्तनशील प्रदान करें। पुनः पुनः = अन्य वरदान देने के लिये नारदजी भगवान् को रोक रहे हैं। अतः, इदमेव याचे = यही (युष्मत्पादाब्जभक्तिः) मैं माँगता हूँ ॥८३॥

श्रीवेदव्यास उवाच---इत्येवमीडितो रामः प्रादात्तस्मै वरान्तरम्।
विरराम महातेजाः सच्चिदानन्द विग्रहः ॥ ८४॥

श्रीवेदव्यासजी ने कहा--

इत्येवम = इस प्रकार से। ईडितो रामः = प्रार्थित श्रीरामजी। तस्मै = नारदजी के लिये। वरान्तरम् = दूसरा वरदान। प्रादात् = दिये। महातेजाः = महान प्रभावसम्पन्न। सच्चिदानन्दविग्रहः = सत्यात्मक, चिदात्मक तथा आनन्द शरीर वाले (श्रीरामजी) विरराम = मौन हो गये। अर्थात् "अद्वैतममलं ज्ञानमादि" वरदान देकर अपने वक्तव्य से विरत हो गये ॥ ८४ ॥

विशेषः---इत्येवमीडितो रामः = उक्त प्रकारेण नारदेन प्रार्थितोऽरम रामः। पुनः कीदृशः रामः महातेजा सच्चिदानन्दविग्रहः रामः "अद्वैतममलमित्यादि द्वितीयादि वरं प्रदाय विरराम इतिसमुदितोऽर्थः। अर्थात् यादृशविशेषणविशिष्टोरामः वरान्तरं प्रादात् स एव विरराम। सच्चिदानन्दविग्रहः = मनुष्य के आकार में सच्चिदानन्दरूप से प्रकाशमान्। महातेजाः = यज्ज्योतिरमलं शिवम्" "तदेनपरमं तत्त्वम्" "एवं सञ्चिन्तयेद

विष्णु' यज्ज्योतिरमलं शिवम्'' "ज्योतिर्मयं राममहं भजामि" इत्यादिस्थलों में कहे गये परमतत्त्व पदवाच्य भगवान श्रीरामजी मौन हो गये ॥ ८४ ॥

अद्वैतममलं ज्ञानं त्वन्नामस्मरणन्तथा ।
अन्तर्धानं जगामाथ पुरतस्तस्यराघवः ॥ ८५॥

अद्वैतम्=श्रीरामजी की समानता तथा अधिकता का निवर्तक, श्रीरामजी के सदृश अन्य तत्त्व नहीं है इस प्रकार द्वैत रहित। अमलम्=मलरहित अथवा मलनाशक। ज्ञानम्=ज्ञान। तथा=और। त्वन्नामस्मरणम्=आपके नाम का स्मरण। अथ=वरदान देने के अनन्तर। तस्य=श्रीनारदजी के। पुरतः=सामने से। राघवः=श्रीरामजी। अन्तर्द्धानम्=अन्तर्हित (छिपना) जगाम=हो गये। अर्थात् श्रीनारदजी की उत्कण्ठा बढ़ाने के लिए कुछ क्षण के लिये अन्तर्धान हो गये।

विशेषः—श्रीरामजी के द्वारा प्रदत्त अन्य वरदानों को कह रहे हैं। अद्वैतम् =अद्वैतज्ञान अर्थात् श्रीरामजी से भिन्न परतत्त्व अन्य कोई नहीं है, न तो इनके समान ही है न इनसे अधिक ही है। श्रुतौ यथा—

"न तत्समश्चा भ्यधिकश्च दृश्यते" न तस्य प्रतिमाऽस्ति यस्य नाम महद्यशः" चिन्मयस्याद्वितीयस्य ब्रह्मणो रूपकल्पना"

अमलंज्ञानम्=निर्मलज्ञान अर्थात् अपने भक्तोंके मायामल का निरास करने वाला ज्ञान। गीतायां यथा-"मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते"। तथा=दूसरा वरदान। त्वन्नामस्मरणम्=आपके नाम का सदा स्मरण होता रहे। अर्थात् आपके नाम को सदा जपता रहूँ। अङ्ग सहित वरदान को देकर भगवान् श्रीरामजी कुछ काल के लिए श्रीनारद जी की स्वदर्शन विषयक उत्कण्ठा को बढ़ाने के लिए अन्तर्द्धान हो गए। कुछ काल के लिए भगवान का अन्तर्हित होना इसलिए कहा जा रहा है कि नारदजी को वरदान मिला है कि "यत्त्वया चेप्सितं सर्वं मनसा तद् भविष्यति" श्रीनारद जी को श्रीराम रूप का दर्शन ही अभीष्ट है। श्रीरामजी का वरदान भी मिथ्या नहीं हो सकता। यथा-"रामो द्विर्नाभिभाषते"। अतः कुछ क्षण के लिए ही श्रीरामजी का श्रीनारदजी के नयन का विषय न होना। युक्तियुक्त तथा प्रकरण सङ्गत है ॥८५॥

इति श्रीरघुनाथस्य स्तवराजमनुत्तमम्।
सर्व सौभाग्य सम्पत्ति दायकं मुक्तिदं शुभम् ॥८६॥

इति=श्रीरामस्तवराज की समाप्ति का परिचायक इति शब्द है। श्रीरघुनाथस्य =श्रीरामजी का। अनुत्तमम्=सबसे श्रेष्ठ। स्तवराजम्=श्रीरामजी की स्तुति का प्रकाशक। सर्व सौभाग्य सम्पत्तिदायकम्=सभी प्रकार के सौभाग्य अर्थात् राजादि सम्मान, ऐश्वर्य, विद्या, महत्त्व, सभी प्रकार की सम्पत्ति (श्री प्रदान करने वाला है। शुभम्=

कल्याण सम्पादक। मुक्तिदम्=अविद्यानिवर्तन पूर्वक श्रीरामजी की प्राप्ति होने वाले फल को कहा जा रहा है। अनुत्तमम्=उद्गच्छति तमो यस्मात्तदुत्तमम्। नास्त्युत्तमं यस्मात्तदनुत्तमम। अर्थात् तमोगुण का संस्पर्श जिसे न हो वह उत्तम हुआ, और यह उत्तमत्व अन्यत्र न हो वह अनुत्तम है। श्रीरघुनाथस्य स्तवराजम=श्रीरामजी की स्तुति का प्रकाशक अर्थात् श्रीरामजी के स्वरूप, नाम, गुण, विभूति, धाम आदि का यथावस्थित रूप प्रकाशित करने वाला है। इसलिये इसकी बराबरी का कोई अन्य ग्रंथ नहीं है। सर्व सौभाग्य सम्पत्तिदायकम्=से इस लोक के समस्त पदार्थों को सुलभ करना तथा अन्त में अपरावर्तन विषयक भगवद्धाम की प्राप्ति होना कहा गया है ॥८६॥

कथितं ब्रह्मपुत्रेण वेदानां सारमुतमम्।
गुह्याद् गुह्यतरं दिव्यं तवस्नेहात् प्रकीर्तितम् ॥८७॥

ब्रह्मपुत्रेण=ब्रह्माजी के पुत्र सनत्कुमार तथा नारदजी के द्वारा। वेदानाम्=ऋग् यजुः साम अर्थववेद का। उत्तमम्=श्रेष्ठ। सारम्=तत्त्वभूत। कथितम्=अर्थ प्रकाशन किया गया है। गुह्याद्=गोपनीय से। गुह्यतरम्=अतिशय गोपनीय। दिव्यम्=लोक में अप्रसिद्ध अर्थात् सर्वसामान्यव्यक्तियों में अज्ञात (यह रहस्य)। तव=तुम्हारे। स्नेहात् =प्रेम से। प्रकीर्तितम्=मेरे (श्री वेदव्यास) द्वारा प्रकाशित किया गया है ॥ ८७॥

विशेष : ब्रह्मपुत्रेण=वेद का अध्यापन भगवान् ने स्वयं ब्रह्माजी को किया अतः वे वेद के तात्पर्य में संशय विपर्यय शून्य हैं। ब्रह्माजी के मानस पुत्र होने के नाते ब्रह्माजी का वेद सम्बन्धी ज्ञान याथातृथ्य, अविच्छिन्न रूप से श्री सनत्कुमारादि में है। अतः श्रीसनत्कुमार तथा नारदजी वेद का तात्पर्य भली भाँति जानते हैं इसको अभिव्यक्त किया जा रहा है "वेदानां सारमुत्तमम्" इस कथन द्वारा। वेदानाम= सर्वेषां वेदानाम सारम् तात्त्विकरूपम। तथा उत्तमम्=परब्रह्म का स्वरूप क्या है। परब्रह्म शब्द द्वारा किस तत्त्व को कहते हैं, जो इस स्तवराज में साङ्गोपाङ्ग वर्णित है। यही वेद का उत्तम सार है। और इससे भिन्न जो लोग मानते हैं वह वेद सार नहीं है। अतएव वे वेद के तात्पर्य को नहीं जानते। इसलिये यह "गुह्याद् गुह्यतरं दिव्यम्=अत्यन्त अप्रकाशित दिव्य रहस्य है। श्रीयुधिष्ठिर जी की जिज्ञासा का विषय है 'किं तत्त्वं किं परं जाप्यं किं ध्यानं मुक्ति साधनम्" परतत्त्व विषयक स्वरूप, नाम, ध्यान का कथन है जिसमें इस प्रकार का श्रीराम स्तवराज। तव=युद्धिष्ठर के। स्नेहात्=स्नेह से मेरे (श्रीवेदव्यासजी के) द्वारा कहा गया है ॥ ८७ ॥

यः पठेच्छृणु याद्वापि त्रिसंध्यं श्रद्धयान्वितः॥८८॥
ब्रह्महत्यादि पापानि तत्समानि बहूनि च।
स्वर्णस्तेय सुरापान गुरुतल्पायुतानि च ॥८९॥

यः=जो कोई भी मनुष्य । श्रद्धयान्वितः=श्रद्धायुक्त होकर । त्रिसंध्यम्= प्रातः, मध्याह्न, तथा सायंकाल में । (इस श्रीरामस्तवराज को) पठेत्=पढ़े । वापि= अथवा । शृणुयात्=सुने । (वह) ब्रह्महत्यादि पापानि=ब्राह्मण का वध करना आदि में है जिसके इस प्रकार के अन्य जो महापाप हैं । च=तथा । तत्समानि बहूनि=इसके समान और भी बहुत से पाप । (ब्रह्महत्यादि के आदि पद से अन्य जो महापातक हैं उन्हें गिना रहे हैं) स्वर्णस्तेय सुरापान गुरुतल्पायुतानि=सोने की चोरी करना, मदिरा पीना, गुरु शय्या का सम्पर्क करनादि अनेक (सर्वैः पापैः प्रमुच्यते) इस अग्रिम श्लोक में अन्वय है ॥ ८६ ॥

विशेष—श्रीरामस्तवराज पाठ तथा श्रवण के मुख्य फल को कहकर उसके गौण फल को कह रहे हैं । कोई भी व्यक्ति श्रद्धासम्पन्न तीनों सन्ध्याओं में इस स्तवराज को यदि पढ़ता है । (पाठ करे) यदि पाठ करने में समर्थ नहीं तो इसे सुने । तो पाठ करने के समान ही आनुषङ्गिकफल उसे प्राप्त होते हैं । यद्यपि "ब्रह्महा स्वर्णहारी च सुरापी गुरुतल्पगः । महापातकिनो ह्येते तत्संसर्गी च पञ्चमः ॥ १ ॥ इस स्मृति प्रमाण के बल से स्वर्णस्तेयादि महापाप ब्रह्महत्यादि में ही आते हैं । तथापि यहाँ स्वर्णस्तेयादि को जो पृथक् कहा है । यह कथन श्रीरामतापनीयश्रुति के अनुसार ही है । यथा —स ब्रह्महत्यां तरति स वीरहत्यां तरति स भ्रूणहत्यां तरति स सर्वहत्यां तरति" अतः ब्रह्महत्यादिघटक आदि पद से इन सबका ग्रहण जानना चाहिये । तत्समानि=ब्रह्महत्या के सदृश । बहूनि च=बहुत प्रकार के । वे कौन हैं इस में कहा— स्वर्णस्तेयसुरापानगुरुतल्पायुतानि च" अर्थात् इनकी संख्या अयुत है । अयुत शब्द अनन्तवाचक है । स्मृति में "तत्संसर्गी च पञ्चमः" जिसने ब्रह्महत्यादि पाप नहीं किया है केवल ब्रह्महत्यादि पाप करने वाले का संसर्गी है वह पाँचवा भी महापापी है ॥ ८६ ॥

गोवधाद्युपपापानि ह्यनृतात्सम्भवानि च ।
सर्वैः प्रमुच्यते पापैः कल्पायुतशतोद्भवैः ॥ ६० ॥

गोवधाद्युपपापानि=गोवधादि उपपातक (कहे जाते हैं) । हि=निश्चय । च=और अनृतात् सम्भवानि=मिथ्याभाषण से उत्पन्न होने वाले पाप । कल्पायुतशतोद्भवैः=अयुत (दशसहस्र) शतकल्प में उत्पन्न होने वाले (अनन्त पाप) सर्वैः पापैः=अर्थात् अनन्त जन्म द्वारा उपार्जित समस्त सञ्चित पाप । प्रमुच्यते=छूट जाते हैं । अर्थात् श्रीरामस्तवराज के पाठ करने वाले को अत्यन्त छोड़ देते हैं ॥६०॥

विशेषः—गोवधाद्युपपापानि=गोहनन मात्र ही गोवध नहीं कहलाता । किन्तु गोवधशब्द आतिदेशिक है भिन्न भिन्न प्रकार के पाप भी गोवध ही हैं यथा—

गामाहारं प्रकुर्वन्तं पिबन्तं यो निवारयेत् । याति गोविप्रयोर्मध्ये गोहत्याञ्च लभेत्तु सः ॥१॥ दण्डैर्गान्ताडयन् मूढ़ो यो विप्रो वृषवाहकः । दिने-दिने

गवां हत्यां लभते नात्र संशयः॥२॥ ददाति गोभ्यः उच्छिष्टं भोजयेद् वृषवाहकम्। भोजयेद्वृषवाहान्नं स गोहत्यां लभेद् ध्रुवम् ॥३॥ वृषलीपतियाजयेद् यो भुंक्तेऽन्नं तस्ययोनरः। गोहत्याशतकं सोऽपि लभते नात्रसंशयः ॥४॥ पादं ददाति वह्नौयो गाञ्च पादेन ताड़येत्। गृहं विशेदधौतांघ्रिः स्नात्वा गोवधमालभेत् ॥ ५ ॥ यो भुंक्तेऽस्निग्धपादेन शेतेस्निग्धांघ्रिरेव च। सूर्योदये च। द्विर्भोजी स गोहत्यां लभेद् ध्रुवम् ॥ ६ ॥ अवीरान्नञ्च यो भुंक्ते योनि जीवी च ब्राह्मणः। यस्त्रिसन्ध्या विहीनञ्च स गोहत्यां लभेद्ध्रुवम् ॥७॥ पितृंश्चपर्वकाले च तिथिकाले च देवता। न सेवितेऽतिथिं यो हि स गोहत्यां लभेद् ध्रुवम् ॥ ८ ॥ स्वभर्त्तरि च कृष्णे वा भेदबुद्धिं करोति या। कटूक्त्या ताड़येत् कान्तं सा गोहत्यां लभेद् ध्रुवम् ॥ ९ ॥ गोमार्गं खननं कृत्वा ददाति शस्यमेव च। तडागे च तदूर्ध्वं वा स गोहत्यां लभेद् ध्रुवम् ॥ १० ॥ प्रायश्चित्तं गोवधस्य यः करोति व्यतिक्रमम्। अर्थलाभादथाज्ञानात् स गोहत्यां लभेद् ध्रुवम् ॥ ११ ॥ राजके दैवके यत्नात् गोस्वामी गां न पालयेत्। दुःखं ददाति यो मूढ़ो गोहत्यां लभते ध्रुवम् ॥१२॥ प्राणिनं लङ्घयेद् योहि देवाचामनलं जलम्। नैवेद्यं पुष्पमन्नञ्च स गोहत्यां लभेद् ध्रुवम् ॥ १३ ॥ शश्वन्नास्तीति वादी यो मिथ्यावादी प्रतारकः। देवद्वेषी गुरुद्वेषी स गोहत्यां लभेद् ध्रुवम् ॥१४॥ देवताप्रतिमां दृष्ट्वा गुरुं वा ब्राह्मणं प्रति। न सम्भ्रमान्नमेत् योहि स गोहत्यां लभेद् ध्रुवम् ॥ १५ ॥ न ददात्याशिष्यं कोपात् प्रणताय च यो द्विजः। विद्यार्थिने च विद्यांश्च स गोहत्यां लभेद् ध्रुवम् ॥१६॥ ब्रह्मवैवर्त प्रकृति खण्ड २७ अध्यायः ॥

अनृतात् = मिथ्याभाषण आदि से उत्पन्न होने वाली अनन्तपापराशि। पाँच स्थल पर झूँठ बोलने का पाप नहीं लगता। यथा--विवाह काले रति संप्रयोगे प्राणात्यये सर्वधनापहारे। विप्रस्य चार्थे ह्यनृतं वदेद पञ्चानृतान्याहुरपातकानि ॥१॥ अन्यत्र मिथ्या भाषण पाप साधक है अतः इनके द्वारा होने वाले पाप। कल्प = सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग इन चारों युगों की एक चौकड़ी कहलाती है ऐसी एक हजार चतुर्युग परिमितकाल को कल्प (ब्राह्म दिन) कहते हैं। इतने लम्बे समय में कितने जन्म हो सकते हैं यह गणनातीत विषय है अतः अनेक जन्मार्जित पापराशि (संचित रूप) श्रीरामस्तवराज के पाठक को अपने आप छोड़ देती हैं ॥ ९० ॥

मानसं वाचिकं पापं कर्मणा समुपार्जितम्।
श्रीरामस्मरणेनैव तत्क्षणान्नश्यति ध्रुवम् ॥ ९१ ॥

मानसम् = मन के द्वारा। वाचिकम् = वचन के द्वारा। कर्मणा = शरीर के द्वारा। समुपार्जितम् = सम्यक् किये गये। पापम् = पाप। (कल्मष) श्रीरामस्मरणेन =

श्रीराम नाम के स्मरण से । एव = अन्य सहयोगी के विना भी । तत्क्षणात् = श्रीराम नाम के उच्चारण या (स्मरण) क्षण में । ध्रुवम् = निश्चित रूप से । नश्यति = नाश हो जाते हैं ॥ ६१ ॥

विशेष :- सञ्चित, क्रियमाण पाप, श्रीरामजी के एक बार स्मरण से तत्काल ही नष्ट हो जाते हैं। तब स्तवराज के पाठ करने वाले की बात ही क्या है। इसीको वर्तमान श्लोक से दिखाया जा रहा है।

मानसं वाचिकं कर्मणा समुपार्जितं पापम = मन वचन शरीर से अर्जित जितने भी पाप हैं वे सब। श्रीरामस्मरणेनैव = केवल श्रीरामजी के मानसिक स्मरण मात्र से (नष्ट हो जाते हैं)। अर्थात् संचित क्रियमाण पाप स्मरण द्वारा नष्ट हो गये, प्रारब्ध भोग द्वारा नष्ट हो गये श्रीरामजी को प्राप्ति में कोई प्रतिवन्धक नहीं रहा। श्रुतौ यथा— इह पुण्य पापे विधूय निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति। तत्क्षणात् ध्रुवं नश्यति = स्मरण के क्षण में ही निश्चित नष्ट हो जाते हैं। श्रुतौ यथा— "यथेषीकातूलमग्नौ प्रोतं प्रदूयेतैवं हास्य सर्वेपाप्मानः प्रादूयन्ते" मूञ्ज की रूई में आग लगे पर उसे जलने में देर नहीं लगती उसी प्रकार पाप के जलने में देर नहीं होती। जैसे वहाँ रूई शेष नहीं रहती यहाँ पाप शेष नहीं रहता। अतः "देहान्ते मुक्तिदं शुभम्" वर्तमान शरीरावसान में श्रीरामजी की प्राप्ति रूप मुक्ति स्तवराज के पाठकों को हो जाती है ॥ ६१ ॥

इदं सत्यमिदं सत्यं सत्यमेतदिहोच्यत ।
रामः सत्यं परब्रह्म रामात् किञ्चिन्न विद्यते ॥६२॥

इदं सत्यम् = श्रीरामजी का मन्त्र तारक संज्ञक परं जाप्य है यह सत्य है। इदं सत्यम = श्रीरामजी का नाम भुक्ति मुक्ति प्रदान करने वाला है यह सत्य है। एवत् सत्यम = भगवान् श्रीराम जी का ध्यान मुक्ति साधन है यह सत्य है। अथवा श्रीराम स्तवराज में कथित सभी विषय सत्य हैं इसमें कोई दो राय नहीं है। द्विर्बद्धं सुवद्धं भवति इस न्याय से उसी को तीन वार सत्य शब्द से कहा गया। इह = इस श्रीरामस्तव-राज में। रामः = श्रीरामजी। परब्रह्म = परब्रह्म (हैं)। सत्यम = यह भी सत्य है (क्योंकि) रामात् = श्रीरामजी से (परे)। किंचिन्‍त् = कोई भी तत्त्व। न विद्यते = नहीं है ॥६२॥

विशेष :- श्रीरामजी सगुण ब्रह्म हैं उनका कार्यभूत निखिल जगत् है, यदि ये दोनों सत्य हों तो इसमें कथित सभी बातें घटें। श्रुतिगण—

'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' मन सैवेदमाप्तव्यम्' ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति' ब्रह्म सन् ब्रह्माप्नोति' ।

से सजातीय विजातीय स्वगतभेद शून्य चिन्मात्र ब्रह्म का ही प्रतिपादन है। इत्यादि आशंका का समाधान प्रस्तुत पद्य द्वारा किया जाता है। इदं सत्यम् इव

स्तवराज में जो कहा गया है कि श्रीरामजी नारायणादि के कारण हैं सम्पूर्ण जगत् के कारण हैं सबके व्यापक है। निरञ्जनादि पद वाच्य हैं। परमतत्त्व हैं। उनका मन्त्र परम जाप्य है, संसार तारक है। श्रीरामनाम भुक्ति मुक्ति प्रदान करने वाला है। ध्यानमुक्ति प्रदान करने वाला है। श्रीरामजी से भिन्न कोई अक्षरादि पदवाच्य नहीं हैं। एतत् सत्यमिदं सत्यम्=यह सब सत्य है। तीन बार सत्य कहकर सभी सन्देह की व्यावृत्ति की गई। रामः सत्यं सत्यं परब्रह्म=श्रीरामजी परब्रह्म हैं यह सत्य है। श्रुतौ यथा—"सत्यं ज्ञान मनन्तं ब्रह्म" अर्थात् सर्वोत्कृष्ट, वृहद्गुणयोगी, निखिल हेय प्रत्यनीक, असंख्येय कल्याण गुणगण निलय, सच्चिदानन्द विग्रह श्रीरामजी ही हैं। श्रीरामपद का सच्चिदानन्द अर्थ है। श्रुतौ यथा—

रमन्ते योगिनोऽनन्ते सत्यानन्दे चिदात्मनि। इति रामपदेनासौ परब्रह्माभिधीयते ॥ १ ॥ अर्धमात्रात्मको रामो ब्रह्मानन्दैक विग्रहः। धृत्वा व्याख्यान निरतश्चिन्मयः परमेश्वरः ॥ २ ॥

श्रीरामजी से भिन्न परब्रह्म का निषेध किया जा रहा है। रामात्=श्रीराम जी से (भिन्न) किञ्चिन्न विद्यते=कोई भी वस्तु नहीं है। अथवा "रामः सत्यं परं ब्रह्म" से व्यापक जीव, प्रकृति के भी व्यापकत्व का निर्वचन है अर्थात् श्रीरामजी परव्यापक है। श्रीरामजी से ही प्रकृति जीव समूह में व्यापकता है। अर्थात् ज्ञाननिष्ठ व्यापकता जीव की देह में स्वरूप निष्ठ व्यापकता प्रकृति में है अतः चिद चिद् शरीर वाले श्रीरामजी से भिन्न कोई तत्त्व, नहीं है और विशिष्टाद्वैत भी उपपन्न होगया ॥ ६२ ॥

तस्माद्रामस्य रूपोऽयं सत्यं सत्यमिदं जगत् ॥

तस्माद्रामस्यरूपोऽयम्=यहाँ अयम् शब्द का प्रयोग आर्ष है। श्रीरामजी का शरीर होने के कारण ही। इदं जगत्=यह संसार। सत्यं सत्यम्=सर्वथा सत्य है।

विशेष—इसी बात को स्पष्ट करते हुये जगत् के सत्यत्व को साध रहे हैं। श्रीरामजी जीव प्रकृति के बाहर भीतर व्याप्त हैं जैसे लोह खण्ड में अग्नि बाहर भीतर व्याप्त रहने के कारण वह लोंह खण्ड अग्नि रूप ही हो जाता है इसी प्रकार यह जगत् रामरूप ही हो गया है। अतः "तस्माद्रामस्य रूपोऽयम" कहा गया। श्रीरामजी का रूप होने के कारण ही इदं जगत् सत्यम्=यह संसार सत्य है। यदि जगत् को मिथ्या प्रतीति मात्र माने तो व्याप्य जगत् के अभाव में व्यापक परब्रह्म वाधित हो जायगा। अर्थात् व्याप्याभाव प्रयुक्त परब्रह्मनिष्ठ व्यापकत्वाभाव सिद्ध होने पर सम्पूर्ण वेद वेदान्त स्मृति का व्याकोप हो जायेगा। अद्वैत सिद्धान्त सिद्ध ज्ञानादि उपाय व्यर्थ हो जायेंगे। तथा जीव की संसार से विमुक्ति रूप ब्रह्म प्राप्ति नहीं हो सकेगी। अतः रामरूपत्वात् जगत् की सत्यता स्थिर की गई। जगत् सत्य है। श्रुतौ यथा— अजामेकां लोहित शुक्ल कृष्णां

वह्वीं प्रजां जनयन्ती सरूपाम् । अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः॥ गीता में भी जगद् की नित्यता स्पष्ट है । यथा--प्रकृति पुरुषं चै विद्ध्यनादी उभावपि ॥ अतः प्रकृति एवं जीव के अनादि तथा नित्य होने से सर्वथा इन दोनों तत्वों की स्थिति सिद्ध है । "आकाशवत् सर्वगतश्च नित्यः" इस श्रुति द्वारा श्रीरामजी की व्यापकता में नित्यवत्व सिद्ध है ।

श्रीसूतउवाच---श्रीरामचन्द्र रघुपुङ्गव राजवर्य राजेन्द्र राम रघुनायक राघवेश ।
राजाधिराज रघुनन्दन रामभद्र दासोऽहमद्य भवतः शरणागतोऽस्मि॥६३

श्रीसूतजी ने कहा—

श्रीरामचन्द्र=हे श्रीरामजी आप चन्द्र के सदृश (सन्ताप विनाशक, आह्लादक तथा ज्ञान-भक्ति के प्रकाशक अर्थात् देने वाले) हैं। रघुपुङ्गव=हे रघुवंशियों में श्रेष्ठ (दानी अपने आपको भी देने वाले) हैं। राजवर्य=हे राजाओं में श्रेष्ठ (पुत्र सदृश प्रजापालक)। राजेन्द्र=हे चक्रवर्ती महाराज । राम रघुनायक राघवेश=आप ही योगियों में रमण करने वाले, रघुवंशियों के नायक राघवेन्द्र हैं। राजाधिराज रघुनन्दन रामभद्र=आप राजाओं के भी राजा, रघुवंशियों को आनन्द देने वाले, श्री-रामभद्र नाम से व्यवहृत होते हैं । अद्य=आज से । दासोऽहम्=मैं सेवक के रूप से। भवतः=आपकी । शरणागतोऽस्मि=शरण में आया हूँ ।

विशेष—श्रीव्यास युधिष्ठिर सम्वाद द्वारा श्रीरामस्तवराज को समाप्त करके श्रीरामजी के भक्त श्रीसूतजी भगवान् श्रीरामजी की शरण में जाकर उनके दर्शन, तथा नामस्मरण में प्रीत्यादिशयत्व को दिखला रहे हैं। श्रीरामचन्द्र रघुपङ्गवराजवर्य आदि बहुत नामों के कीर्तन से अपने को श्रीरामजीका ऐकान्तिक भक्त सूचित किये । श्रीव्यास जी द्वारा श्रीरामजी के गुण, स्वरूप, स्वभाव, नाममहिमादि को जानकर अन्य उपाय से भगवान् की कृपा की अप्राप्ति समझकर केवल "भवतः शरणागतोऽस्मि" कहकर "सर्व धर्मान् परित्यज्यमामेकं शरणं व्रज" इस भगवदीय आज्ञा का पालन कर रहे हैं। श्रीपञ्चरात्र कथित छः प्रकार की शरणागति में "अनुकूल्यस्य संकल्पः" भगवान की अनुलता के लिये श्रीरामजी को ही एकमात्र उपाय तथा स्वीकार करना चाहिए। दासोऽहम इसका पाँचवें श्लोक के अन्तिम पाद "भवजलधिनिमग्नं मां रक्ष" में अन्वय है ॥ ६३॥

वैदेही सहितं सुरद्रुमतले हैमे महामण्डपे ।
मध्ये पुष्पकमासने मणिमये वीरासने संस्थितम् ॥
अग्रे वाचयति प्रभञ्जन सुते तत्त्वं च सद्भिः परम् ।
व्याख्यातं भरतादिभिः परिवृतं रामं भजे श्यामलम् ॥६४

सुरद्रुमतले=कल्पवृक्ष के नीचे। हैमे महामण्डपे=स्वर्णनिर्मित विशाल मण्डप में । मध्ये=महामण्डप के मध्यभाग में । मणिमये=पद्मरागादि महामणियों से खचित ।

पुष्पकम्=पुष्पक नाम के। अथवा महालक्ष्मी की कान्ति से शोभायमान। आसने=आसन पर। वीरासने=वीरासन से। (विवक्षातः तृतीयार्थे सप्तमी) संस्थितम्=सम्यक् विराजमान। वैदेहीसहितं रामम्=श्रीजानकीजी के सहित श्रीरामजी। श्यामलम्=नीलमणि की कान्ति के समान (श्रीरामजी)। अग्रे=आगे। प्रभञ्जन सुते=वायु के पुत्र श्रीहनुमान् जी। सद्भिः=सज्जनों द्वारा। व्याख्यातम्=कहा गया। परंतत्त्वम=उत्कृष्ट तत्त्व अर्थात् सर्वकारणकारणत्व। वाचयति=(श्रीभरतादि के द्वारा प्रेरित होने पर) श्रीहनुमानजी के द्वारा कहा जा रहा है। भरतादिभिः परिवृत्तम्=श्रीभरत लक्ष्मण शत्रुघ्नादि के द्वारा घिरे हुये। (श्रीरामजी को) भजे=भजता हूँ अर्थात् सेवा में प्रस्तुत हूँ ॥ ६४ ॥

विशेष—लंका से विजय करके श्रीअयोध्या में आये हुये भगवान् श्रीसीतारामजीकी झाँकी का ध्यान किया जा रहा है। वैदेही सहितम् रामंभजे कीदृशं रामं श्यामलं भरतादिभिः परिवृतञ्च रामम्। पुनः कथं भूतं रामम्। सुरद्रुमतले हैमेमहामण्डपे मध्ये मणिमये पुष्पक (नामक) आसने वीरासने (न) संस्थितम। पुनः कीदृशं रामम। सद्भिः व्याख्यातं परं तत्त्वम् अग्रे प्रभञ्जनसुते। वाचयतिसति। श्रीभरतादि के पूँछने पर मुनियों द्वारा कथित परत्त्व श्रीहनुमान् जी कह रहे हैं। वह परतत्त्व क्या है "यत्परंयद् गुणातीतं यज्ज्योतिरमलं शिवम्। तदेव परमं तत्त्वं कैवल्य पद कारणम् ॥ १ ॥ श्लोक कथित परतत्व श्रीरामजी ही हैं यह व्यासजी के द्वारा कहा गया है। श्रीनारदजी के द्वारा कहा गया श्रीरामजी के विषय में करुणा, दया, भक्तवत्सलता, परविभूति स्वामी आदि। यथा—

परात्परतरं तत्त्वं सत्यानन्दं चिदात्मकम्। मनसा शिरसा नित्यं प्रणमामि रघूत्तमम् ॥ १ ॥ सर्वेषां त्वं परंब्रह्म त्वन्मयं सर्वमेव हि। त्वमक्षरं परं ज्योतिस्त्वमेव पुरुषोत्तमः ॥२॥ त्वमेव तारकं ब्रह्म त्वत्तोऽन्यन्नैव किञ्चन। शान्तं सर्वगतं सूक्ष्मं परंब्रह्म सनातनम् ॥३॥ राजीवलोचनं रामं प्रणमामि जगत्पतिम्॥

इस परतत्त्व में दृढ़विश्वास उत्पन्न करने के लिये श्रीहनुमानजी कह रहे हैं॥६४

रामं रत्न किरीट कुण्डलयुतं केयूर हारान्वितम्।
सीतालंकृतवामभागममलं सिंहासनस्थं विभुम् ॥
सुग्रीवादि हरीश्वरैः सुरगणैः संसेव्यमानं सदा।
विश्वामित्र पराशरादि मुनिभिः संसेव्यमानं प्रभुम्॥६५

रत्न किरीट कुण्डलयुतम्=रत्न निर्मित मुकुट तथा कुण्डल को धारण किये हुये। केयूरहारान्वितम्=बाजूबन्द तथा हार को धारण किये हुये। सीतालंकृतवामभागम=वामपार्श्व श्रीजानकीजी से सुशोभित। अमलम्=प्रकृति के मल से रहित, अथवा

आश्रित जनके मलको दूर करने वाले। सिंहासनस्थम्=सिंहासन में विराजमान। विभुम्=सर्वव्यापक। सुग्रीवादि हरीश्वरैः=सुग्रीव प्रभृति वानर राजाओं के द्वारा। सुरगणैः=इन्द्रादि देवताओं के द्वारा। सदा=सब काल में। संसेव्यमानम्=सम्यक् सेवित। विश्वामित्र पराशरादि मुनिभिः=विश्वामित्र वशिष्ठ पुत्र पराशर आदि मुनिजनों से। संसेव्यमानम=सम्यक् (अहर्निश) स्तूयमान। प्रभुम्=ऐश्वर्य सम्पन्न। रामम्=श्रीरामजी को। (भजे) इस पूर्व श्लोक में अन्वित है।

विशेष—श्रीजानकीजी के सहित सिंहासन में विराजमान यथायथ विविध विभूषणों से विभूषित भगवान श्रीरामजी का ध्यान बताया जा रहा है। श्री अयोध्या के राजसिंहासन में स्थित रहने पर भी विभु अर्थात सर्व व्यापक हैं अतएव विश्वामित्र पराशरादि मुनियों द्वारा सार्वकालिक स्तुति सम्पन्न होती है तथा देवताओं के द्वारा कृत सेवा को ग्रहण करते हैं। प्रभु हैं इसीलिये वानर प्रभृति राजाओं के द्वारा सर्वदा सेव्य हैं। विश्वामित्र पराशरादि के आदि पद से जिन ऋषियों के गोत्र चलते हैं वे सभी ऋषि जन संगृहीत हैं। जब ऋषियों द्वारा सेव्य हैं तो उन ऋषियों के अनुयायी तत्तद् गोत्र वाले मनुष्यों द्वारा अवश्य सेव्य होना चाहिए। यदि वे मनुष्य श्रीरामजी की सेवा से पराङ्मुख हैं तो वे उन ऋषियों के गोत्रीय तथा अनुयायी नहीं हैं। यह भाव इस श्लोक के द्वारा सूचित किया गया॥ ९५॥

सकलगुणनिधानं योगिभिः स्तूयमानम्।
भुजविजितविमानं राक्षसेन्द्रातिमानम्॥
महितवृषभयानं सीतया शोभमानम्।
स्मृतहृदयविमानं ब्रह्मरामाभिधानम्॥ ९६॥

सकलगुणनिधानम्=सम्पूर्ण दया दाक्षिण्यादि गुणों के आलय। योगिभिः=श्रीसनत्कुमार नारदादि योगियों द्वारा। स्तूयमानम्=प्रार्थित। भुजविजितविमानन्=हाथ के बल से जीत लिये हैं विमान पुष्पक नामक) को जिन्होंने। राक्षसेन्द्रातिमानम्=रावण को नाश करने वाली समुन्नति है जिसकी। महितवृषभयानम्=पूजित है सर्वोत्कृष्ट पुष्पक विमान जिनका। सीतयाशोभमानम्=श्रीजानकीजी के द्वारा शोभायमान। स्मृत हृदय विमानम्=विगतमान हृदय वाले भक्तों का स्मरण है जिन्हें। ब्रह्म=वृहत्गुणयोगी। रामाभिधानम्=राम नाम है जिनका। (इस प्रकार के विशेषण विशिष्ट श्रीरामजी को मैं भजता हूँ, पूर्व में अन्वित है)॥ ९६॥

विशेष:—ब्रह्म शब्द द्वारा श्रीरामजी को ही कहा जाता है। इसीको दिखला रहे हैं। सकलगुणनिधानम्=निखिल दिव्यगुणगणनिलय। महर्षि वाल्मीकि सम्पूर्ण दिव्य गुणों की सूची बनाकर श्रीनारदजी से पूछा। यथा—

कोन्वस्मिन् सांप्रतं लोके गुणवान् कश्च वीर्यवान् । धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च सत्यवाक्यो दृढ़व्रतः ॥ १ ॥ चारित्रेण च को युक्तः सर्वभूतेषु को हितः । विद्वान् कः समर्थश्च कश्चैक प्रियदर्शनः ॥ २ ॥ आत्मवान् को जितक्रोधो द्युतिमान् कोऽनुसूयकः । कस्य बिभ्यति देवाश्च जातरोषस्य संयुगे ॥ ३ ॥ वा० १।२ ॥

इन सम्पूर्ण गुणों की खानि चरित्रवान् व्यक्ति पर ही निर्धारित है। सच्चरित्र से देवताओं को भी भय होता है। "चारित्रेण च को युक्तः" तथा "प्रिय दर्शनः से श्रीराम जी का परममाधुर्य तथा "कस्य बिभ्यति देवाश्च" से ऐश्वर्य व्यक्त किया। "कश्चैक प्रियदर्शनः" से मनोनयनानन्द दाता, "जितक्रोधः" से आश्रित जनरक्षण में सतत् प्रयत्नशील सूचित हुआ। श्रीनारदजी ने कहा कि जिन गुणों को आपने कहा है उन गुणों से युक्त पुरुष अत्यन्त दुर्लभ है त्रैलोक्य में मेरा अव्याहत संचरण होता है मेरी दृष्टि में इन समस्त गुणों से युक्त एक ही पुरुष है। यथा – इक्ष्वाकुवंश प्रभवो रामो नाम जनैः श्रुतः। ये समस्त गुण (जिन्हें आपने कहा भी नहीं) उन्हीं श्रीरामजी में मैंने सुना तथा देखा है। "स च सर्वगुणोपेतः कौसल्यानन्दन वर्धनः" तथा 'तमेवं गुणसम्पन्नं रामं सत्यपराक्रमम्' आदि। भगवान् श्रीरामजी के उन दिव्यगुण की एक झलक श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण के अयोध्या कांडस्थ प्रथम सर्ग में है। यथा—

स हि वीर्योपपन्नश्च रूपवाननसूयकः । भूमावनुपमः सूनुर्गुणैर्दशरथोपमः ॥ १ ॥ स तु नित्यं प्रशान्तात्मा मृदुपूर्वञ्च भाषते । उच्यमानोऽपि परुषं नोत्तरं प्रतिपद्यते ॥२॥ कथंचिदुपकारेण कृतेनैकेन तुष्यति । न स्मरत्यपकाराणां शतमप्यात्मवत्तया ॥ ३ ॥ शीलवृद्धैर्ज्ञान वृद्धैर्वयो वृद्धैश्च सज्जनैः । कथ यन्नास्त वैनित्यमस्त्रयोग्यान्तरेष्वपि ॥४॥ बुद्धिमान् मधुराभाषी पूर्वभाषी प्रियंवदः । वीर्यवान्न च वीर्येण महता स्वेन विस्मितः ॥ ५ ॥ न चानृतकथो विद्वान् वृद्धानां प्रतिपूजकः । अनुरक्तः प्रजाभिश्च प्रजाश्चाप्यनुरज्यते ॥६॥ सानुक्रोशो जितक्रोधो ब्राह्मण प्रतिपूजकः । दीनानुकम्पी धर्मज्ञो नित्यं प्रग्रह वाञ्छुचिः ॥ ७ ॥ कुलोचितमतिः क्षात्रं धर्मं स्वं वहुमन्यते । मन्यते परया कीर्त्या महत्स्वर्गफलं ततः ॥८॥ नाश्रेयसि रतो यश्च न विरूद्धकथारुचिः । उत्तरोत्तरयुक्तीनां वक्ता वाचस्पतिर्यथा ।९॥ अरोगस्तरूणो वाग्मी वपुष्मान् देशकालवित् । लोके पुरूषसारज्ञः साधुरेको विनिर्मितः॥१९॥ स तु श्रेष्ठ गुणैर्युक्तः प्रजानां पार्थिवात्मजः । वहिश्चरइव प्राणो वभूव गुण तः प्रियः॥११॥

श्रीरामजी के गुणोंका किञ्चिदंश ही उद्धृत किया गया है। स्मृतहृदयविमानम् =हृदयविमानं मान रहित हृदयो येषान्ते हृदयविमानाः प्रपन्नाः भक्तास्ते स्मृता येन तमित्यर्थः। अर्थात् भगवान् के स्मरण से ही भक्तजनों का योग क्षेम होता रहता है।

यथा—दर्शन ध्यान संस्पर्शैः मत्स्यकूर्मविहङ्गमाः । स्वापत्यानि पुष्णन्ति तथाऽहमपि पद्मज ॥ १ ॥ ब्रह्मरामाभिधान=ब्रह्म शब्द सामान्य वाचितया समस्त भगवद् विग्रह का बोधक होने के कारण तदव्यवहित राम शब्द का प्रयोग किया गया। रामअभिधान अर्थात् नाम (संज्ञा) है जिसकी, इस प्रकार विशेषण विशिष्ट श्रीरामजी को भजता हूँ। ब्रह्म शब्द परब्रह्म का बोधक है अतः परब्रह्माभिन्न रामजी भजन के विषय हैं।

रघुवर तव मूर्तिर्मामके मानसाब्जे । नरकगति हरन्ते नामधेयं मुखेमे ॥
अनिश मतुलभक्त्या मस्तके त्वत्पदाब्जे ।
भवजलधिनिमग्नं रक्षमामार्त्त बन्धो ॥६७॥

रघुबर=हे रघुवंशियों में श्रेष्ठ (श्रीरामजी) । मामके=मेरे । मानसाब्जे=हृदयकमल में। अनिशम्=सतत्। तव मूर्तिः=आपकी नितान्त कमनीय नीलमणि के समान मूर्ति (का साक्षात्कार हुआ करे) नरकगति हरम्=सभी प्रकार के तापोंका नाशक। ते=आपका । नामधेयम्=नाम (श्रीराम) मे=मेरे। मुखे=मुख में। अतुलभक्त्या=अतुलित अनुराग से। (अनिशम् वर्तमान रहे) त्वत्पदाब्जे=आपके चरणारविन्द युगल (अतुलित अनुराग से सर्वदा मेरे मस्तक में विराजमान रहें)। आर्तबन्धो=हे दुःखियों के दुःख को देखकर स्वयं दुःख का अनुभव करने वाले। जलधि निमग्म्=जन्ममरणरूप संसार सागर में डूबता हुआ। माम्=मुझको। रक्ष=रक्षा करें, अर्थात् जन्म मरण से बचायें॥ ६७॥

विशेषः—श्रीराम नाम तथा स्वरूप सर्वदा परमानुराग से मुझे प्राप्त होता रहे यह प्रार्थित है। नरकगतिहरम्=श्रीराम नाम का जापक नरक नहीं जाता। स्वर्गीय सुखों को भी वह विघ्न समझता है। ब्रह्मा का वैभव भी उसकी दृष्टि में अल्प है। परम निर्मल अन्तःकरण वाले भक्तों को ही भगवान् मुक्ति (भगवत्प्राप्ति) प्रदान करते हैं। तब उनके कीर्तन से पाप नाश हो गया इसमें क्या आश्चर्य है। यथा—

यस्मिन्न्यस्तमतिर्न याति नरकं स्वर्गोऽपि यच्चिन्तने। विघ्नो यत्र निवेशितात्ममनसो ब्राह्मोऽपि लोकोऽल्पकः। मुक्तिं चेतसि यः स्थितोऽमलधियां पुंसां ददात्यव्ययः। किं चित्रं यदघं प्रयाति विलयं तत्राच्युते कीर्तिते ॥१॥

विवश होकर भी भगन्नाम कीर्तन से नरक पहुँचाने वाले समस्त पातक सिंह से डरे मृग के समान पुरुष को छोड़ देते हैं। भक्ति पूर्वक यदि नाम जपा गया तो उससे श्रेष्ठ अन्य कोई साधन नहीं है। जैसे अग्नि के संयोग से सभी धातु भस्म हो जाते हैं उसी प्रकार सम्पूर्ण पाप दग्ध हो जाते हैं। यथा—अवशेनाऽपि यन्नाम्नि कीर्तिते सर्व पातकैः। पुमान् विमुच्यते सद्यः सिंहत्रस्तैर्मृगैरिव॥ १ ॥ यन्नामकीर्तनं भक्त्या विलापन-मनुत्तमम्। मैत्रेयाशेष पापानां धातूनामिव पावकः॥ २ ॥ एक बार भी यदि भगवान का

नाम उच्चरित हो जाता है तो वह मोक्ष के लिये बद्ध परिकर हो जाता है। यथा—सकृदुच्चरितं येन हरिरित्यक्षरद्वयम्। बद्धः परिकरस्तेन मोक्षाय गमनं प्रति ॥१॥ भगवान के नाम कीर्तन से बड़े उग्र पाप नष्ट होते हैं सद्यः नष्ट होते हैं उसमें आवृत्ति की आवश्यकता नहीं है। यथा हत्यायुतं पानसहस्रमुग्रं गुर्वङ्गनाकोटिनिषेवणञ्च। स्तेयान्यसंख्यानि हरेः प्रियेण गोविन्दनाम्ना निहतानि सद्यः ॥ १ ॥ इसलिये श्रीप्रह्लाद जी ने भगवत्प्रीति को ही माँगा है। यथा—नाथयोनि सहस्रेषु येषु येषु व्रजाम्यहम्। तेषु तेष्वच्युताभक्तिरच्युतास्तु सदा त्वयि ॥ १ ॥ या प्रीतिरविवेकानां विषयेष्वनपायिनी। त्वामनुस्मरतः सा मे हृदयान्मापसर्पतु ॥ ६७ ॥

रामरत्नमहं वन्दे चित्रकूटपतिं हरिम् ।
कौशल्याशुक्ति सम्भूतं जानकीकण्ठ भूषणम् ॥६८॥

चित्रकूटपतिम्=श्रीचित्रकूट नामक स्थल विशेष के पति । हरिम्=दुःख के हरण करने वाले। कौशल्याशुक्तिसम्भूतम=कौशल्या रूप शुक्ति (सूती) में आविर्भूत। जानकीकण्ठभूषणम्=श्रीजानकी जी के कण्ठ के आभरण। रामरत्नम=श्रीराम रूप में विराजमान रत्न को। अहं वन्दे=मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ६८ ॥

विशेष :—भगवान् श्रीरामजी का विहारस्थल चित्रकूट का स्मरण करके चित्रकूटपति श्रीरामजी की वन्दना की जाती है। चित्रकूट पतिम् चित्राणि=मणिमाणिक्य स्वर्ण रत्नादि के विचित्र कूट (पर्वत शृङ्ग) हैं जहाँ उस चित्रकूट के स्वामी। श्रीरामजी श्रीजानकी जी तथा लक्ष्मणजी से परम पुण्यारण्य चित्रकूट का वर्णन करके अपने निवास की इच्छा व्यक्त की है। यथा--

आदीप्तानिव वैदेहि सर्वतः पुष्पितान्नगान्। स्वैः पुष्पैः किंशुकान् पश्य मालिनः शिशिरात्यये ॥ १ ॥ पश्य भल्लातकान् बिल्वान् वानरैरुपसेवितान्। फलपुष्पैरवनतान्नूनं शक्ष्याम जीवितुम् ॥२॥ पश्य द्रोण प्रमाणानि लम्बमानानि लक्ष्मण। मधूनि मधुकारीभिः संभृतानि नगे नगे ॥ ३ ॥ एषक्रोशति दात्यूहस्तं शिखी प्रतिकूजति। रमणीये वनोद्देशे पुष्प संस्तर संकटे । ४ । मातङ्गयूथानुसृतं पक्षिसंघानुनादितम्। चित्रकूटमिमं पश्य प्रवृद्ध शिखरं गिरिम् ॥ ५ ॥ समभूमितले रम्ये द्रुमैर्बहुभिरावृते। पुण्ये रंस्याम हे तात चित्रकूटस्य कानने ॥६॥ वा०रा०अ० ५६।६-११ ॥

सुरम्य चित्रकूट तथा परमपावनी मन्दाकिनी को प्राप्त करके श्रीअयोध्या विरह जन्य दुःख की निवृत्ति होने पर भगवान् श्रीरामजी परम प्रसन्न हुये। यथा—

सुरम्यमासाद्य स तु चित्रकूटं नदीं च तां माल्यवतीं सुतीर्थाम्। ननन्दरामो मृगपक्षि जुष्टां जहौ च दुःखं पुरविप्रवासात् ॥ वा०अ० ५६॥

चित्रकूट में कामदानाथ पर्वत के समीप पर्णकुटी बनाकर वास्तुपूजनादि करके भगवान् श्रीरामजी बारह वर्ष पर्यन्त निवास किये । आगे की लीलायें भगवान की इच्छा मात्र से सम्पन्न हुईं यह भी एक प्रबल मत है। चित्रकूट से गये नहीं। रत्नरूप श्रीरामजी की वन्दना की जा रही है जो श्री जानकी जी के कण्ठ के भूषणभूत हैं। इस रत्न का आविर्भाव कोशलदेश के राजा की पुत्री कौशल्या रूपी शुक्ति से है। इस रत्न के मूल्य का परीक्षण श्रीजानकी के द्वारा हुआ, अतएव उन्होंने ही इसे अपने कण्ठ में धारण किया।

अतएव श्रीराम मन्त्र की प्रचारिका श्रीजानकी जी मानी गई हैं। इनके द्वारा ही तारक मन्त्र प्रचलित हुआ है। वर्णाश्रम के धर्म के अनुष्ठान से अन्तःकरण पवित्र होता है। उस पवित्र अन्तःकरण में भक्तियोग का अभ्यास करने पर ही श्रीभगवान में प्रेम उत्पन्न हो जाता है जो अत्यन्त अनुकूल और प्रिय होता है। प्रेम मिश्रित ध्यान परभक्ति है भगवत्प्राप्ति का प्रथम सोपान है। भगवद् विषयक प्रीति ज्ञान का ही एक आकार है इस भक्ति रूपी ज्ञान को ही शास्त्रों में मोक्ष का साधन माना गया है। ब्रह्म को प्राप्त करके ही जीव सुखी होता है। लौकिक पदार्थ भोग्य एवं जड़ हैं भोक्ता के लिये अनुकूल लगते हैं सुख बन जाते हैं जड़ होने के कारण अपने लिये अनुकूल नहीं लगते । भगवान् इससे विलक्षण हैं अपने लिये भी अनुकूल लगते हैं। परब्रह्म सदा सुखीबनकर रहता है। और भक्तों को साक्षात्कार करा के उन्हें भी सुखी बना देता है। परब्रह्म ही श्रेष्ठ तत्त्व है लीलाविभूति तथा त्रिपाद्विभूति का स्वामी है। भक्तों की सुलभता के लिये ही सौशील्य, सौन्दर्य, वात्सल्य आदि गुणों की खानि हैं। चेतना चेतन के स्वामी हैं। जब साधक यह जान लेता है कि श्रीरामजी का मैं दास हूँ सेवक हूँ श्र सीतारामजी मेरे स्वामी हैं तब उसे अपार प्रीति होती है। जीव अपने को भगवान् के परतन्त्र जानता है, भगवान् को स्वतन्त्र कर्त्तुम कर्त्तुमन्यथा कर्त्तुं समर्थ जानकर, और उनका अविच्छेद्य सम्बन्ध जानकर इसके हर्ष का ठिकाना नहीं रहता। अतः इसके द्वारा जो भी कार्य होता है वह भगत्सेवा के ही अन्तर्गत है। कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग के अनुष्ठान से परम प्रसन्न श्रीसीताराम जी साधक को संसार छुड़ाकर सतत् अपनी सेवा का स्थान परमपद देकर सर्वदा के लिये सुखीकर देते हैं। जीव और भगवान् के मध्य में श्रीजानकी जी ही साक्षात्साधनरूप होकर भगवान् की प्राप्ति का श्रेय प्रदान करती हैं॥६८॥

॥ हर्याचार्यकृत श्रीरामस्तवराज की तात्पर्यबोधिका हिन्दी टीका समाप्त ॥

॥ समाप्तश्चायं ग्रन्थः ॥

जगद्गुरु श्रीमदनन्तानन्दाचार्यप्रणीतं ।

❀ श्रीयतीन्द्राष्टकम् ❀

नमो भगवते श्रीमत्सुशीलानन्ददायिने । राघवानन्दशिष्याय यतीन्द्राय नमो नमः ॥१
नमो भगवते श्रीमत्सूनवे पुण्यसद्मनः । आचार्य सार्वभौमाय यतीन्द्राय नमो नमः ॥२
नमो भगवते श्रीमद्रामानन्दाय धीमते । आनन्दभाष्यकाराय यतीन्द्राय नमोनमः॥३
नमो भगवते श्रीमद्वैष्णवधर्मरक्षिणे ! विजेत्रेऽनन्तसिद्धानां यतीन्द्राय नमोनमः ॥४
नमो भगवते श्रीमद्रामभक्ति प्रचारिणे।सम्प्रदायाब्धिचन्द्राय यतीन्द्राय नमोनमः॥५
नमो भगवते श्रीमद्विशिष्टाद्वैतवादिने । वादिवारणसिंहाय यतीन्द्राय नमो नमः ॥६
नमो भगवते श्रीमद्रामाय गुणसिन्धवे । तीर्थराजेऽवतीर्णाय यतीन्द्राय नमोनमः ॥७
नमो भगवते श्रीमद्वेदतत्त्वार्थभाषिणे । निगमागमसंरक्षित्रे यतीन्द्राय नमो नमः ॥८

❀ श्रीरामाष्टकम् ❀

अगाधसद्गुणाम्बुधिं समस्तविश्वकारणम्। समस्तलोकनायकं प्रणौमि राममीश्वरम्॥१
स्वभक्तभीतिभञ्जनं दिनेशवंशमण्डनम् । क्षितीशनाथनन्दनं प्रणौमि राममीश्वरम्॥२
ऋषीन्द्रयज्ञरक्षकं मुनीन्द्रदारतारकम् । प्रकृष्टशक्तिदर्शकं प्रणौमि राममीश्वरम् ॥३
उमेशचापभञ्जकं दयाब्धिमैथिलीधवम् । कुठारपाणिसंस्तुतं प्रणौमि राममीश्वरम् ॥४
स्वतातसत्यपालकं वनाधिवासशालिनम्। मुनीद्रवृन्दपूजितं प्रणौमि राममीश्वरम् ॥५
कुरङ्गराक्षसापहं सुकण्ठमित्रतावहम् । सुबद्धहससागरं प्रणौमि राममीश्वरम् ॥६
दशास्यसंविनाशकं विभीषणस्य राजदम् । अजादिदेववन्दितं प्रणौमि राममीश्वरम्॥७
सविघ्नराज्यकारक हनूमदादिसेवितम्। सुभुक्तिमुक्तिदायकं प्रणौमि राममीश्वरम्॥८
वैष्णवाभाष्यकारश्रीवैष्णवाचार्यनिर्मितम् । रामाष्टमिदं भूयादखिलश्रेयसे सताम् ॥९

❀ वायुनन्दनाष्टकम् ❀

सुरेश्वरादिपूजितं मुनीन्द्रवृन्दवन्दितम् । खरारिहस्तलालितं नमामि वायुनन्दनम् ॥१
खगेशदर्पभञ्जनं स्वभक्तवृन्दरञ्जनम् । कुभाग्यचक्रगञ्जनं नमामि वायुनन्दनम् ॥२
स्वनाथदासरक्षकं श्रुते रहस्यशिक्षकम् । कपीशमत्तघातकं नमामि वायुनन्दनम् ॥३
अजेयपौरुषान्वितं दयाब्धिलङ्घिताम्बुधिम् । दास्यपूर्विदाहकं नमामि वायुनन्दनम्॥४
ज्वलत्सुवर्णवर्णवद्वगंजनेयवर्णिनम् । मनोजवं गुणार्णवं नमामि वायुनंदनम् ॥५
पिशाचभूततर्जकं कुमंत्रतंत्रनाशनम् । बलिष्ठवज्रदेहिनं नमामि वायुनन्दनम् ॥६
महागदाऽद्रिधारिणं त्रितापनाशकारिणम् । सुकण्ठभीतिहारिणं नमामि वायुनन्दन्॥७
परेशरामसेवक विदेहजाशुचोहरम् । समस्तविघ्ननाशकं नमामि वायुनन्दनम् ॥८
वैष्णवभाष्यकारश्रीवैष्णवाचार्यनिर्मितम् । सम्भूयाष्टकं चेदं वायुनन्दनतोषकम् ॥९

❀ श्रीहनुमतेनमः ❀

भूमिका

आत्मपरमात्म निरूपण करनेवाले दर्शनोंमें वेदान्तदर्शन ही दर्शन शिरोमणिरूपसे प्रसिद्ध है। वेदान्तके अद्वैत द्वैत द्वैताद्वैत आदि सिद्धान्तोंमें परमवैदिक युक्तियुक्त तथा ब्रह्मसूत्रकार भगवान श्रीवेदव्यासजी बोधायनवृत्तिकार जगद्गुरु श्रीपुरुषोत्तमाचार्यजी बोधायन और प्रस्थानत्रय (उपनिषद् गीता तथा ब्रह्मसूत्र) के आनन्दभाष्यकार जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्यजी यतीन्द्र द्वारा संरक्षित श्रीरामानन्दवेदान्तका विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त ही मुक्ति का यथार्थ पथप्रदर्शक है। विशिष्टाद्वैतसिद्धान्तकी प्रक्रियाके प्रकाशक ग्रन्थ तत्त्वत्रयबोध श्रौतसिद्धान्तबिन्दु चिदात्मप्रबोध प्रबोधकलानिधि वेदन्तचिन्तामणि तथा प्रमेयपरिशोधिनी इत्यादि संस्कृतभाषा में और शिक्षासुधा विशिष्टाद्वैतसिद्धान्तसार त्रिरत्नी तत्त्वत्रयनिरूपण तत्त्वत्रयदर्पण तत्त्वालोक तथा श्रीरामानन्दसिद्धान्तसार आदि राष्ट्रभाषा हिन्दी में हैं। तोभी मैंने कोमलबुद्धि वेदान्ततत्त्वजिज्ञासुओंकेलिये पद्यमें अति सूक्ष्म तथा अत्यन्त सुगम यह "श्रौतसिद्धान्त चालीसा" अथवा "वेदन्तसिद्धान्तसार" नामक निबन्ध रचा है। यह ग्रंथ श्रीरामानन्दवेदान्त की बालपोथी है। समस्त श्रीरामानन्दीय विरक्त सन्तों महन्तों विद्वानों छात्रों श्रीरामायणी महानुभावों तथा सद्गृहस्थ बन्धुओं से नम्र निवेदन है कि आप सर्व महानुभाव इस छोटे से ग्रन्थ के प्रचार द्वारा श्रीरामानन्द वेदान्त के विशाल प्रचार में सहायक बनकर मेरे प्रयास को सफल बनाने की कृपा करें।

❋ एक आवश्यक वक्तव्य ❋

श्रीरामानन्द सम्प्रदाय के सत्य इतिहास को न जानने वाले कुछ लेखकों के लेख के आधार पर "जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजी जगद्गुरु श्रीरामानुजाचार्यजीकी परम्परा के आचार्य हैं" इस प्रकार जो कहा जाता है, वह अप्रमाणिक और असत्य हैं। क्योंकि गीता के आनन्दभाष्य के मंगलाचरण में जगद्गुरु श्रीरामनन्दाचार्यजीने अपनी परम्परा स्वयं ही लिखी है। यह परम्परा जगद्गुरु श्रीरामानुजाचार्य जी की परम्परा से अत्यन्त भिन्न है। यथा--

श्रीरामं जनकात्मजामनिलजं वेधोवशिष्टावृषी, योगीशं च पराशरं श्रुतिविदं व्यासं जिताक्षं शुकम् श्रीमन्तं पुरुषोत्तमं गुणनिधिं गङ्गाधराद्यान् यतीन् श्रीमद्राघवदेशिकं च वरदं स्वाचार्यवर्यं श्रये ॥ २ ॥

अर्थ—श्रीरामजी श्रीजानकीजी श्रीहनुमानजी ब्रह्मा वशिष्ट ऋषि योगीश्वर पराशर वेदवित् श्रीव्यासजी जितेन्द्रिय शुकदेवजी गुणनिधि श्रीमान् पुरुषोत्तमाचार्य तथा गंगाधराचार्य इत्यादि यतिराजों और आचार्यवर्य श्रीमद् राघवानन्दजी का मैं आश्रय (अवलम्बन) करता हूँ। ता०-११-७-१९७५ ई०

उपनिषद्भाष्यकार:-

स्वामी श्रीवैष्णवाचार्य वेदान्ततीर्थ

* सीतारामभ्यां नमः *

❀ आनन्दभाष्यकार जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्याय नमः ❀

❀ जगद्गुरु श्रीटीलाचार्याय नमः ❀ जगद्गुरु श्रीमंगलाचार्याय नमः ❀

उपनिषद्भाष्यकार स्वामी श्रीवैष्णवाचार्य वेदान्ततीर्थविरचित

श्रौतसिद्धान्त चालीसा अथवा वेदान्तसिद्धान्तसार
अर्थ प्रबोधिनी सहित

मुक्तिमार्गज्ञापक रचौं वन्दि अखिलपति राम।
सरल श्रौतसिद्धान्त का चालीसा अभिराम ॥१॥

अर्थप्रबोधनी

वन्दि रामपद पद्मयुग भवसागर दृढ़सेतु।
विरचौं अर्थप्रबोधिनी अर्थप्रबोधन हेतु॥

मैं (स्वामी वैष्णवाचार्य वेदान्ततीर्थ) सर्वेश्वर भगवान् श्रीरामजी का वन्दना करके मुक्तिमार्ग (भक्ति) का ज्ञापक सरल और सुन्दर श्रौतसिद्धान्त चालीसा (वेदान्त सिद्धान्तसार) रचता हूँ॥ १॥

भाष्यकार नमि जगद्गुरु रामानन्दाचार्य।
वन्दौं टीलाचार्यवर तथा मंगलाचार्य ॥२॥

आनन्दभाष्यकार अनन्त श्रीजगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजी को नमस्कार करके अनन्त श्रीजगद्गुरु श्रीटीलाचार्यजी तथा श्रीअनन्त जगद्गुरु श्रीमंलाचार्यजीको नमस्कार करता हूँ॥ २॥

राम भजे नाशत सब खेदा। ब्रह्म राम प्रतिपादत वेदा॥
श्रुति सिद्धान्त विशिष्टाद्वैता। नहिं श्रुति युक्ति रहित अद्वैतः॥१॥

श्रीरामजी को भजने से सब शोक नष्ट हो जाते हैं। वेद परब्रह्म भगवान् श्री रामजीका प्रतिपादन करते हैं। श्रुतियोंका सिद्धान्त विशिष्टाद्वैत है। श्रुतियों से रहित अद्वैतमत श्रुतिसिद्धान्त नहीं है॥१॥

आनन्दभाष्यकार अनन्त श्रीजगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजीने भी कहा है कि— "एवञ्चाखिल श्रुतिस्मृतीतिहासपुराण सामाञ्जस्यादुपपत्तिबलाच्च विशिष्टाद्वैतमेवास्य मीमांसाशास्त्रस्य विषयो न केवलाद्वैतम्।" (आनन्दभाष्य) अर्थ—इस प्रकार से सम्पूर्ण श्रुति इतिहास तथा पुराणोंके सामंजस्य (संगति) होनेसे और युक्ति (तर्क) बल से विशिष्टाद्वैत ही इस ब्रह्ममीमांसाशास्त्रका विषय है केवलाद्वैत नहीं। अनन्त श्री

जगद्गुरु श्रीटीलाचार्यजीने भी कहा है कि—"कोउ द्वैत अद्वैत कोउ कोउ कह द्वैताद्वैत। युक्तियुक्त टीला कहत श्रौत विशिष्टाद्वैत॥" अनन्त श्री जगद्गुरु श्रीमंगलाचार्यजी ने भी कहा है कि "वैदिक मत विशिष्टाद्वैत"।

औपनिषद् मत अर्थ विवेका। कारण कार्य ब्रह्म दोउ एका॥
ब्रह्म प्रलय में कारण रूपा। कार्य ब्रह्म सोई जगरूपा॥२॥

उपनिषदों के मत (विशिष्टाद्वैत) का अर्थ है—कारण ब्रह्म और कार्यब्रह्म की एकता। ब्रह्म प्रलयदशा में कारणरूप और सृष्टि अवस्था में कार्यरूप (जगत्‌रूप) होता है॥ २॥

चित् औ अचित् विशिष्टहि रामा। ब्रह्म दिव्यतनु शुभगुण धामा।
दोष रहित सच्चित् सुख रूपा। जेहि अनन्त गुण देह स्वरूपा॥३॥

परब्रह्म श्रीरामजी सदा चित् (चेतन) और अचित् (अचेतन) तत्त्वों से विशिष्ट ही (युक्त ही) रहते हैं। श्रीरामजी दिव्य (अप्राकृत) देह वाले तथा शुभ सत् चित और आनन्द रूप हैं। जिन श्रीरामजी के देह गुण और स्वरूप अनन्त (अन्तरहित) हैं॥ ३॥

अद्वितीय स्वामी भगवन्ता। वेदवद्य सर्वज्ञ नियन्ता॥
सर्वेश्वर विभु सब जगकारी। सकल विश्व पालक संहारी॥४॥

श्रीरामजी अद्वितीय (अनुपम) स्वामी भगवान् (ज्ञान बल वीर्य ऐश्वर्य शक्ति और तेज इन छः गुणों वाले) वेदों से जानने योग्य सर्वज्ञ सर्वनियन्ता सर्वेश्वर विभु (व्यापक) तथा सर्व जगत् के सृष्टि पालन और संहारकर्त्ता हैं॥ ४॥

विश्वमूल ब्रह्मादि विधाता। सर्वाराध्य सकलफलदाता॥
उभय विभूति राम-परतंत्रा। राम स्वतंत्र भक्त-परतंत्रा॥५॥

श्रीरामजी जगत् के मूल (उपादानकरण) हैं। ब्रह्मा इत्यादि देवों के उत्पादक हैं। सर्व के आराध्य अथवा सर्व कर्मों से आराध्य हैं और सर्वफलों के देने वाले हैं। लीलाविभूति (प्राकृतलोक) और नित्यविभूति (अप्राकृतलोक=भगवद्धाम) दोनों ही श्रीराम जी के आधीन हैं। श्रीरामजी परम स्वतन्त्र होने पर भी भक्ताधीन रहते हैं॥५॥

सुमिरत कबहुँ न निजजन-दोषा। करत अल्प सुकृतहु से तोषा।
निराधार हरि निखिलाधारा। धारत करत स्व इच्छा द्वारा॥६॥

श्रीरामजी कभी भी अपने भक्तों के दोषों का स्मरण नहीं करते। थोड़े से ही सत्कर्म से सन्तुष्ट हो जाते हैं। पापों के हरण करने वाले हैं। स्वयं आधार रहित हैं परन्तु सर्व के आधार हैं। श्रीरामजी सर्व का धारण तथा सर्व की सृष्टि अपनी इच्छा से करते हैं॥ ६॥

प्रलय माहिं रघुवर तनु रूपा। सूक्ष्म अचित् चित् नाम न रूपा।
जगत् सृष्टि जब राम विचारैं। नाम रूप तब दोउ तनु धारैं॥७

प्रलयदशा में श्रीरामजी के देहरूप चित् और अचित् दोनों सूक्ष्म होते हैं। उस कालमें उक्त दोनों तत्त्व नाम और रूप से विहीन होते हैं। जब श्री रामजी जगतकी सृष्टि करनेका विचार करते हैं तब श्रीरामजीके उक्त दोनों (चित् और अचित्) शरीर नाम और रूपको धारण करते हैं ॥ ७ ॥

श्रीसीतापति–इच्छा द्वारा। जीव प्रकृति दोउ लहैं विकारा ॥
जीव-स्वरूप नित्य अविकारी। जीव स्वभावहिं होत विकारी ॥ ८

श्रीरामजी की इच्छा से जीव और प्रकृति दोनों तत्त्व विकार को प्राप्त होते हैं। जीव का स्वरूप तो सदैव विकार रहित होता है। जीव का स्वभाव (ज्ञान) ही विकार को प्राप्त होता है ॥ ८

मति विकास संकोच विकारा। जीवहिं होत प्रकृति तनुद्वारा।
ज्ञाता ज्ञान अजड सब जीवा। अणुस्वरूप विभु नाहि असींवा ॥९॥

प्राकृत शरीर द्वारा जीव को ज्ञान संकोच विकास रूप विकार प्राप्त होता है। सभी जीव धर्मभूत ज्ञान (बुद्धि) के आश्रय (ज्ञाता) ज्ञानरूप अजड़ (स्वयं प्रकाश) और अणुस्वरूप हैं। कोई भी जीव सीमारहित विभुपरिमाण वाला (व्यापक) नहीं होता है ॥९

करण कलेवर नहिं नहिं प्राना। स्वकृत कर्मफल भोगत नाना ॥
ईश्वर अंश नित्य सुखरूपा। कर्माधीन रंक कोउ भूपा ॥१०॥

जीवात्मा इन्द्रिय देह और प्राण से भिन्न है। ईश्वर के अंश (ईश्वर देह) उत्पत्ति विनाश शून्य (नित्य) और सुखरूप है। नाना प्रकार के निजकृत कर्मों के फलों को भोगते हैं। कर्माधीन होने से ही कोई राजा और रंक (धनहीन) होता है ॥ १०॥

जीव नियाम्य नियामक रामा। रामभक्ति बिन नहिं विश्रामा।
भक्ति रामसुमिरन इकतारा। यथा अटूट तेल की धारा ॥११॥

जीव नियाम्य और श्रीरामजी नियामक हैं। श्रीराम भक्ति बिना जीव को विश्राम नहीं मिलता है। अटूट तेल की धारा के समान श्रीरामजी का सतत स्मरण ही भक्ति है ॥ ११ ॥

कर्म ज्ञान अंगिनि भव-सेतू। सप्त विवेकादिक तेहि हेतू।
अणुहुँ जीवका व्यापक ज्ञाना। तेहिसे सब तनु सुख दुख जाना ॥१२

कर्म और ज्ञान रूप अंगों वाली भक्ति भव सागर का सेतु (पुल) है। भक्ति के सात हेतु हैं—"१-विवेक" जाति आश्रय और निमित्त दोषों से दुष्ट अन्नको न खाकर काया को शुद्ध रखना। जाति दुष्ट अन्न लशुन प्याज आदि। आश्रय दुष्ट अन्न पतित चोर आदि का अन्न। निमित्त दुष्ट अन्न उच्छिष्ट (जूठा) वासी तथा केश कृमि और विषमिश्रित अन्न आदि। "२-विमोक" शब्द स्पर्श आदि पंच विषयों का अनादर। "३-अभ्यास" फलेच्छा रहित भगवान् के विग्रहका चिन्तन करना। "४-क्रिया" पंच

महाव्रत तथा अन्य आश्रयधर्म। ५-"कल्याण"-अहिंसा सत्य दया दान सरलता तथा चोरी न करने का संकल्प। "६-अनवसाद" शोक और भय से होने वाली दीनता का अभाव। "७-अनुद्धर्ष" मनको शिथिल करने वाले अति सन्तोष का अभाव। जीव अणु है परन्तु उसका ज्ञान व्यापक है। उसी ज्ञान से हृदयस्थ जीव सर्व शरीर के सुख दुख को जानता है ॥ १२ ॥

जीव भिन्न प्रत्येक शरीरा। सो न ब्रह्म परब्रह्म शरीरा ॥
सकल जीव जो होवें एका। सुखी दुखी का कथ विवेका ॥१३॥

प्रत्येक शरीर के जीव भिन्न भिन्न हैं अर्थात् सर्व शरीरों के जीव एक नहीं हैं। जीव ब्रह्म नहीं है किन्तु ब्रह्मका शरीर। सब जीव यदि एक ही हों तो कोई जीव सुखी है और कोई जीव दुखी है यह भेद कैसे हो ? ॥ १३ ॥

अन्तःकरण-भेद से भेदा। सौभरितनु क्यों नहिं सो भेदा ॥
जीव ब्रह्म तो क्यों दुखभोगा। पावत विविध जातिके रोगा ॥१४॥

जो ऐसा कहो कि – "अन्तःकरण के भेद से सुखीदुखीपने का भेद है।" तो मैं पूछता हूँ कि—सौभरि ऋषिके अनेक शरीर होने पर भी सुखीदुखीपने का भेद क्यों नहीं हुआ ? इसी प्रकार यदि जीव ही ब्रह्म है तो वह (जीव) दुखी क्यों होता है ? नाना प्रकार के रोगों को क्यों पाता है ? ॥ १४ ॥

ब्रह्महिं कथं अविद्या लागे ? जहँ प्रकाश तहँ से तम भागे ॥
ब्रह्म अरूप आदि यदि तैसे। जीव ब्रह्म-प्रतिबिंबहु कैसे ? ॥१५॥

जो लोग ऐसा कहते हैं कि – "अविद्या लगने से ब्रह्म ही जीव हो जाता है।" उनसे पूछना चाहिये कि प्रकाशरूप ब्रह्म को अंधकार रूप अविद्या लग ही कैसे सकता है ? क्योंकि जहाँ पर प्रकाश होता है वहाँ से अंधकार दूर भागता है। अतः ब्रह्म ही जीव नहीं होता है। अद्वैती महानुभाव कहते हैं कि—"अविद्या में पड़ा हुआ ब्रह्म का प्रतिबिम्ब ही जीव है।" उनसे मैं कहता हूँ कि आपके मत में ब्रह्म निर्विशेष है अर्थात् रूप और आकार आदि विशेषणों से रहित है। तो फिर उस रूप और आकार से रहित ब्रह्म का प्रतिबिम्ब कैसे पड़ सकता है ? क्योंकि रूप और आकार वाले चन्द्र आदि पदार्थों का ही प्रतिबिम्ब पड़ता है। रूप रहित वायु का प्रतिबिम्ब कहीं भी दिखाई नहीं देता है। अतः जीव ब्रह्म का प्रतिबिम्ब नहीं है ॥ १५ ॥

तत् पद अर्थ ब्रह्म सियस्वामी। त्वं पद अर्थ तवान्तर्यामी ॥
कहे 'तत्त्वमसि' सो दोउ एका। जीव ब्रह्म दोउ कबहुँ न एका ॥ १६

"तत्त्वमसि" यह वेदवाक्य ही जीव ब्रह्मकी एकता को कहता है। ऐसा कुछ लोग कहते हैं। उनके समाधान के लिये मैं तत्त्वमसि वाक्य का यथार्थ अर्थ कहता हूँ— "तत्त्वमसि" वाक्यों में तत् पद का अर्थ है परात्परब्रह्म श्रीरामजी और त्वं पद का अर्थ

है तुम्हारे अन्तर्यामी श्रीरामजी इसलिये तत्त्वमसि वाक्य परात्परब्रह्म श्रीरामजी और अन्तर्यामी श्रीरामजी की एकता को ही कहता है। जीव और ब्रह्म की एकता को नहीं कहता है। अतः जीव और ब्रह्म दोनों भिन्न-भिन्न तत्त्व हैं एक नहीं ॥ १६ ॥

बद्ध मुक्त दुइ जीव विभेदा। संसारी जन पावहिं खेदा ॥
वैष्णव बनि करिके गुरुदेवा। रामशरण गहिकरि गुरुसेवा ॥१७

जीवों के दो भेद हैं बद्धजीव और मुक्त जीव। कर्माधीन होकर जन्म-मरण रूप भवसागर में पड़े हुये जीव बद्धजीव हैं वे संसारी जीव-नाना दुख पाते हैं। अब यह कहा जाता कि-जीव किस प्रकार मुक्त होता है। जीव को चाहिये गुरुदेव की शरण में जाकर पञ्च संस्कारों से संस्कृत होकर श्रीवैष्णव बने। भगवान् श्रीरामजीकी शरण ग्रहण करे और श्रीगुरुदेव की सेवा करे ॥ १७ ॥

बोलै सत्य करै उपकारा। तजै काम क्रोधादि विकारा ॥
सन्तचरण सेवै अभिरामा। निशिदिन रटै सुनै सियरामा ॥१८

सत्य बोले, परोपकार करे, तथा काम क्रोधादि विकारों को छोड़ दे। सुन्दर सन्तचरणों का सेवन करे तथा रात दिन श्रीसीतारामजी का रटन और श्रवण करे॥१८

पूजै राम छोड़ि सब आशा। मन्त्र जपै करि ध्यानाभ्यासा ॥
तजि तनु पावै रघुपति धामा। अर्चिरादि पथसे सुखधामा ॥१६।

सब आशाओं को छोड़कर श्रीरामजी का पूजन करे ध्यानाभ्यास करके श्रीराममन्त्र का जप करे। इस प्रकार जीवन पर्यन्त करता हुआ अन्त में देह त्यागकर परम सुखधाम श्री रामजीके धाम (साकेत धाम) को पाता है ॥ १६ ॥

स्वयंप्रकाश सकल सुखदायक। सुख से सेवै सियरघुनायक ॥
मृत्यु आदि दुखमूल नशाहीं। तारतम्य का भय तहँ नाहीं ॥२०॥

वह साकेत लोक (मुक्तिधाम) स्वयंप्रकाश और सर्वसुखदाता है। मुक्तजीव वहाँ पर सुख से स्वयंप्रकाश और सर्वसुखदायक श्रीसीतारामजी की सेवा करते हैं। वहाँ मृत्यु आदि दुःखों के मूलकारण कर्म नष्ट हो जाते हैं। वहाँ तारतम्य (उत्कर्षापकर्ष) का भय नहीं है ॥ २० ॥

लहि सायुज्य सर्वगति पावै। अविनाशी पर सुख मिलि जावै॥
नित्यमुक्त नित सेवा लीना। कबहुँ न होत कर्म अधीना ॥ २१ ॥
प्रकृति अचित् जड त्रिगुणाधारा। तहँ सतरज तमसम निर्धारा॥
रघुवर सिरजन इच्छा द्वारा। महत् विषमगुण प्रकृति विकारा ॥२२॥
सात्विक राजस तामसरूपा। अहंकार हो महत् अनूपा ॥
ग्यारह इन्द्रिय प्रथम विकारा। षट् ज्ञानेन्द्रिय तहँ निर्धारा ॥२३॥

रस ले रसन चक्षु पुनि देखै । त्वक् परसै रव श्रोत्र हि लेखै ॥
सुमिरै मन सूँघै पुनि नासा । षट्से होय विषय अवभासा ॥२४॥

सायुज्यमुक्ति पाने पर सर्वलोकगति तथा सर्वोत्तम और अविनाशी सुख मिल जाता है । श्रीहनुमानजी आदि नित्यमुक्त जीव तो श्रीरामजी का नित्य कैंकर्य करते हैं । वे कभी कर्माधीन नहीं होते हैं ॥२१॥ अब प्रकृति तत्त्व का वर्णन किया जाता है । प्रकृति अचित् (अचेतन ज्ञानशून्य) है । जड़ है अर्थात् परप्रकाश है स्वयं प्रकाश नहीं है । तथा सत्व रज और तम तीनों गुणोंका आधार है । प्रकृति अवस्थामें तीनों गुणसम रहते हैं । जब श्रीरामजी सृष्टिकररने की इच्छा करते हैं तो गुणों में विषमता होती है । तब महत्तत्व (महान्) नामवाला प्रकृतिका प्रथम विकार होता है ॥२२ ॥ महत्तत्वका विकार अहंकार है । इसके तीन भेद हैं सात्विक राजस और तामस । सात्विकाहंकार से ग्यारह इन्द्रियाँ उत्पन्न होती हैं । उनमें छः ज्ञानेन्द्रिय हैं ॥ २३ ॥ रसन इन्द्रिय से रसका चक्षु से रूप का त्वक् से स्पर्श का श्रोत्रसे शब्द का तथा घ्राण (नासिका) से गन्धका आभास होता है । मनसे स्मरण तथा संकल्प विकल्प आदि होते हैं । उक्त रस रूप आदि इन्द्रियों के छः विषय कहे जाते हैं ॥ २४ ॥

पञ्च कर्म इन्द्रिय निर्धारा । पदसे चलै करै करद्वारा ॥
वर्ण वाक्से बोलन लागै । मूत्र उपस्थ गुदा मल त्यागै ॥२५॥
तामस से तन्मात्रा द्वारा । पाँचहु महाभूत सुविकारा ॥
तन्मात्रा शब्दादिक पाँचा । पंचीकृत भतन जगरांचा ॥२६॥
क्षिति जल पावक पवनाकाशा । पंच भूत गुण पंच प्रकाशा ॥
शब्द स्पर्श रूप रस गन्धा । पंच विषय मारहिं करि अन्धा ॥२७॥
पंचेन्द्रिय से पाँचहु भोगा । भोगत लागत मृत्यु कुरोगा ॥
तेहिकी औषधि विषय विरागा । श्रीसीतारघुवर अनुरागा ॥२८॥

पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं । पदसे चलते हैं । कर (हाथ) से कार्य करते हैं और वाक् से अक्षर बोलते हैं । उपस्थ (लिंग) से मूत्र का और गुदासे मलका त्याग करते हैं ॥ २५ ॥ तामस अहंकार से तन्मात्राओं द्वारा पंचमहाभूत नामक विकार हैं । तन्मात्रा पाँच हैं । शब्द स्पर्श रूप रस और गन्ध । महाभूतों के पंचीकरण होने के पश्चात् पंचीकृत महाभूतों से जगत् बनता है । पंच महाभूतों का पंचीकरण इस प्रकार से होता है—भगवान् प्रत्येक भूतके दो समान भाग करते हैं । आधा वैसे ही रखते हैं और आधे के चार समान भाग कर अवशिष्ट भूतों के रक्षित अर्ध भागों में मिला देते हैं । इस प्रकार पाँचो महाभूतों में पाँचो महाभूत मिल जाते हैं । परन्तु जिसका भाग अधिक (आधा) होता है उसी नाम से वह महाभूत कथित होता है ॥२६॥ महाभूत पाँच हैं- आकाश, वायु, तेज, जल तथा पृथ्वी । तामस अहंकार से शब्दतन्मात्रा उत्पन्न होती है । उससे आकाश उत्पन्न होता है। आकाश से स्पर्श तन्मात्रा उससे वायु. वायु से रूपतन्मात्रा उससे तेज, तेज से रस तन्मात्रा उससे जल जलसे गन्ध तन्मात्रा उससे पृथिवी उत्पन्न होती है । पाँच भूतोंके पाँच गुण हैं। कारण के गुण कार्य के गुणों को उत्पन्न करते हैं । आकाश में शब्द, वायु में शब्द और स्पर्श, तेज में शब्द स्पर्श और रूप, जल में शब्द स्पर्श रूप और रस, पृथिवी में शब्द

स्पर्श रूप रस और गन्ध गुण होते हैं। उक्त पाँचो गुण द्रव्यरूप शब्द स्पर्श आदि तन्मात्राओं से भिन्न हैं। उक्त पाँचों विषय (इन्द्रियों के विषय रूप पाँचो गुण) प्राणी को अन्धा (विषयान्ध) बना कर मार डालते हैं ॥ २७ ॥ पंच इन्द्रियों से पंच भोगों को भोगने से प्राणी को मृत्युरूपी कुरोग लगता है। उसकी औषधि है विषयों से वैराग्य और श्री-सीताराम जो का अनुराग (भक्ति) ॥ २८ ॥

राजत करत उभय सहकारा। सहकृत ह्वै दोउ लहैं विकारा ॥
जड़ विभु अचित् गुणत्रय हीना। काल सकल जग कालाधीना ॥२९॥
सत्य जगत् रघुपति परिणामा। नहिं विवर्त्तका श्रुति में नामा ॥
यथा जाल मकड़ी तन द्वारा। तिमि हरि तन से जगत् पसारा ॥३०॥
सीप रजत-अंशन से रौंचा। तेहि से सीपरजत है साँचा ॥
स्वल्पअंशवश नहिं व्यवहारा। तेहि कारण भ्रमरूप प्रचारा ॥३१॥
व्यूह विभव पर अन्तर्यामी। पञ्चम अर्चातन सियस्वामी ॥
राम परेश सकल सुखहेतू। जासु रटन सुमिरन भवसेतू ॥३२॥

राजसाहंकार सात्विक और तामस अहंकारी का सहकारी है। राजसाहंकार सहकार सहायता) को पाकर ही शेष दोनों अहंकार विकार को प्राप्त होते हैं। अब काल तत्त्व कहा जाता है—कालतत्त्व जड़ विभुपरिमाण वाला (व्यापक) अचेतन (ज्ञानशून्य) तथा सत्वादि तीनों गुणों से रहित होता है। सम्पूर्ण प्राकृत जगत् कालाधीन (अनित्य) है ॥ २६ ॥ जगत् अनित्य होने पर भी सत्य है। क्योंकि वह श्रीरामजी के शरीर का परिणाम (विकार) है। जगत् के विवर्त्त (मिथ्याविकार) होने का उल्लेख वेदों में कहीं भी नहीं है। जैसे जाल मकड़ी के शरीर द्वारा होता है वैसे ही भगवान् के चित् और अचित् शरीर द्वारा जगत् का विस्तार हुआ है। इसलिये श्रीरामानन्दवेदान्ती महानुभाव जगत्को श्रीरामजी का सद्वारक परिणाम मानते हैं। स्वरूप परिणाम नहीं मानते हैं ॥३० जो महाशय कहते हैं—'जगतशुक्तिरजत के सदृश मिथ्या है।' उनके प्रति कहा जाता है कि रजत (चांदी) तैजस पदार्थ है। इसलिये पंचीकरण प्रक्रिया द्वारा शुक्त्यंशों के समान ही रजतांशों से भी शुक्ति नामक पार्थिव बनाता है। अत्यन्त चमक के कारण से शुक्ति रजत स्थल में रजतांशमात्र दिखाई देता है। इसलिये शुक्तिरजत सत्य है मिथ्या नहीं। रजतांश की न्यूनता और शुक्त्यंश की अधिकता के हेतु से शुक्ति (सीप) को रजत न कहकर शुक्ति ही कहते हैं। इसीलिये शुक्तिरजत-स्थल में 'यह रजत है' यह ज्ञान 'यह रजत नहीं है" इस प्रकार से वाधित होकर भ्रम कहा जाता है। इसलिये जगत् के मिथ्या होने में सत्य शुक्ति रजत का दृष्टान्त असंगत है। इसलिए जगत् सत्य है मिथ्या नहीं है ॥३१॥ भगवान् श्रीरामजी की स्थिति पाँच प्रकार की है। पर व्यूह विभव अन्तर्यामी और अर्चावतार भेद से। प्रथम श्रीरामजी के परस्वरूपका वर्णन किया जाता है। श्रीरामजी ही परेश और सर्वसुख हेतु (कारण) हैं। जिनका रटन और स्मरण भवसागर के सेतु हैं ॥ ३२ ॥

अशरण शरण दीनजन बन्धू। स्वाभाविक शक्तयादिक सिन्धू।
स्वजन मुक्तिकर सुलभ सुशीला। जासु सृष्टिपालन लय लीला ॥३३॥

सबसे भिन्न सकल जगरूपा। अगुण सगुण जेहि वेदनिरूपा ॥
सगुण राम नित सद्गुण धारैं ॥ श्रुति प्राकृत गुणरहित प्रचारैं ॥ ३४
ब्रह्म परात्पर सीतानाथा। नित्य मुक्त नितनावहिं माथा ॥
दिव्य बसन भूषण तनश्यामा। दिव्यायुध परिकर अभिरामा ॥३५॥
दिव्यासन राजैं अवतारी। दिव्यधाम साकेतविहारी ॥
वामभाग सीताम्बा सोहैं। परमरम्य निरखत मन मोहैं ॥३६॥

श्रीरामजी शरणरहितों के शरण (रक्षक) हैं। दीनजनों के बन्धु हैं मायाकृत नहीं किन्तु स्वाभाविक तथा सर्वोत्कृष्ट शक्ति ज्ञान बलादि दिव्य गुणों के सिन्धु हैं। निजभक्तोंके मुक्तिदाता सुलभ और सुशील हैं। जगत् के सृष्टि पालन और लय जिनकी लीला हैं ॥ ३३ ॥ श्रीरामजी स्वरूप से सब विलक्षण हैं और चिदचिद्विशिष्ट रूप से सर्व जगत् रूप (सर्वात्मा) हैं। वेद उनका निर्गुण और सगुण रूप से निरूपण करते हैं। श्रीरामजी नित्य वात्सल्य आदि सद्गुणों को धारण करते हैं इस लिये सगुण हैं। वे निर्गुण इस लिये हैं कि श्रुतियां उनका प्राकृत सत्वादि गुणोंसे रहित रूपसे प्रचार करती हैं ॥३४॥ श्रीजानकीनाथ भगवान श्रीरामजी परात्पर ब्रह्म हैं। नित्य जीव और मुक्तजीव उन्हें सदा प्रणाम करते हैं। श्रीरामजी के वस्त्र भूषण श्यामशरीर आयुध और परिजन (पार्षद) सब दिव्य (अप्राकृत) हैं ॥३५॥ श्रीरामजी दिव्यधाम श्री-साकेत में विहार करने वाले तथा अवतारी (सर्व अवतारों के कारण) हैं दिव्य सिंहासन पर विराजमान रहते हैं। वाम भाग में जगज्जननी श्रीजानकी विराजमान् रहती हैं। वे परमरम्य हैं। देखते ही सबके मनको मुग्ध कर देती हैं ॥ ३६ ॥

दयासिन्धु सब जाननहारी। निग्रहरहित अनुग्रहकारी ॥
दिव्य गुणाकर रामाभिन्ना। भप्रा प्रभाकर यथा न भिन्ना ॥ ३७॥
सर्ववन्द्य सबसिरजनहारी। विभु सर्वेश्वरि पालनकारी ॥
चारि वासुदेवादिक व्यूहा। विभव मत्स्यकूर्मादि समूहा ॥ ३८ ॥
हिय बसि सब प्रेरक सियस्वामी। भोग्य कर्म बिन अन्तर्यामी ॥
निखिल लोकपति राम स्वतंत्रा। अर्चातन अर्चक परतंत्रा ॥ ३९ ॥
वहाँ दिव्य तन सियसहरामा। ह्वै प्रसन्न देवैं निज धामा ॥
जो जन अर्चै नमैं निहारैं। स्वयं तरैं औ निजकुल तारैं ॥ ४० ॥

वे श्रीजानकीजी दयासिन्धु और सर्वज्ञ हैं। कभी भी किसी का निग्रह (दण्ड) नहीं करती हैं। वे सदैव कृपा ही करती हैं। दिव्य गुणों की खानि हैं। सूर्य और सूर्य की प्रभा के समान सदैव श्रीरामजी से अभिन्न रहती हैं ॥३७॥ वे श्रीजानकीजी सर्ववन्द्य और पालन करने वाली हैं। विभुपरिमाण वाली (व्यापक) और सर्वेश्वरी हैं। उपासना के लिये और जगत्की सृष्ट्यादि के लिये श्रीरामजीही व्यूहरूप से स्थित होते हैं। व्यूह चार हैं—वासुदेव संकर्षण प्रद्युम्न और अनिरुद्ध। वासुदेव में ज्ञानवलादि छै गुण, संकर्षण में ज्ञान और बल, प्रद्युम्न में ऐश्वर्य और वीर्य तथा अनिरुद्ध में शक्ति और तेज गुण रहते

हैं। इन्हीं चारों व्यूहों से केशवादि द्वादश व्यूह होते हैं द्वादश ऊर्ध्वपुण्ड्रों में उन्हींके स्थान साधुजनसंरक्षण के मत्स्य कूर्म इत्यादि अवतार सर्वावतारी भगवान् श्रीरामजीके विभव अवतार हैं। पद्मनाभ इत्यादि भी विभव अवतार हैं ॥३८॥ जीवों के हृदय में रहकर प्रेरणा करने वाले भगवान् श्रीरामजी अन्तर्यामी हैं। वे भोग्य कर्मों से रहित हैं। अतएव उन्हें जीवों के समान कर्मों के फल रूप सुख दुख नहीं प्राप्त होते हैं। उनका प्रत्यक्ष दर्शन भक्ति मात्र से ही होताहै। भगवान श्रीरामजी सर्वलोकों के स्वामी हैं और परम स्वतन्त्र हैं परन्तु अर्चावतार (मूर्ति) में अर्चक (पुजारी) के परतन्त्र होकर रहते हैं ॥ ३६ ॥ अर्चावतार (मूर्ति) में भगवान् श्रीरामजी जगज्जननी श्रीसीताजी के साथ दिव्य शरीर से रहते हैं। पूजा से प्रसन्न होकर अपना दिव्यधाम साकेतलोक देते हैं। जो लोग श्रीसीतारामजी की मूर्ति का पूजन नमन (दण्डवत्) और दर्शन करते हैं। वे स्वयं तरते हैं और अपने कुलको तारते हैं।

वेद अन्त सिद्धान्त का सार कहा समुझाय ।
स्वामि वैष्णवाचार्य कृति पढ़े सुने भ्रम जाय ॥

इस प्रकार वेदान्त के सिद्धान्त का सार कहा गया। स्वामि श्रीवैष्णवाचार्य वेदान्ततीर्थ के इस ग्रन्थ को पढ़ने और सुनने से संशय दूर हो जाता है।

॥ इति स्वामी श्रीवैष्णवाचार्य कृता अर्थबोधिनी ॥

❀ श्रीहनुमान मधुर चालीसा ❀

दोहा – जय जय जय अंजनि सुवन, भक्तन जीवन प्रान ।
पवन तनय करुणा निधे, रसिया रसिक सुजान ॥

चौ०--जय जय अंजनि दृगन सितारे । अमित तेज बल बुद्धि उजारे ॥ १ ॥
जय मारुत सुत कृपा निधाना । राम भक्त जन जीवन प्राना ॥ २ ॥
जय सियाराम चरण अनुरागी । नहिं जग कोइ तुम सम बड़भागी ॥ ३ ॥
जयति दयानिधि श्रीहनुमाना । सिय रघुबर सेवक जगजाना ॥ ४ ॥
ऐसी करी चरण सेवकाई । निज बश किये सिया रघुराई ॥ ५ ॥
जय सिय रघुवर प्रेम प्रदायक । अति उदार भक्तन सुखदायक ॥ ६ ॥
जय सौमित्रि प्राण के दाता । पाहिमाम् आरत जन त्राता ॥ ७ ॥
जय सिय रघुवर के प्रिय दासा । रहत सदा पद-पंकज पासा ॥ ८ ॥
आप कृपा करि हेरत जेही । सच होइ सिय राम सनेही ॥ ६ ॥
तेहि उर बसत सदा सियारामा । भक्त बछल प्रभु सब सुखधामा ॥ १० ॥
गुन अवगुन देखत नहिं ताके । निवसत आप हृदय में जाके ॥ ११ ॥
प्रभु तेहि प्राणहुँ ते प्रिय जानत । भली भाँति ताको सनमानत ॥ १२ ॥

निश कर करत सदा रखवारी । जाके ऊपर कृपा तिहारी ॥ १३॥
नाथ कृपा अब मोहिं पर करहू । अवगुन मोर न हिय में धरहू ॥ १४ ॥
यद्यपि हौं अति अधम अयानी । तदपि नाथ चरणन रति मानी ॥ १५ ॥
मोपर कृपा करहु अब स्वामी । अशरण शरण नमामि नमामी ॥ १६ ॥
सौम्य मनोहर रूप सम्हारी । दै दर्शन मोहिं करिअ सुखारी ॥ १७ ॥
देखि न सकत भयावन रूपा । दिखलाइअ निज रूप अनूपा ॥ १८ ॥
ललित बदन अति सौम्य स्वरूपा । हियबिच हुलसत रघुकुल भूपा ॥ १९ ॥
नखसिख ललित शृँगार सजाये । सीतापति को हृदय बसाये ॥ २० ॥
यहि विधि दर्शन दीजिय स्वामी । दीनबन्धु प्रभु अन्तरयामी ॥ २१ ॥
हौं मन मोहन रूप निहारी । लपटि रहौं चरणन शिरधारी ॥ २२ ॥
नाथ स्वकर गहि मोहिं उठाइअ । हिय लगाय दुखदूर बहाइअ ॥ २३ ॥
मृदु कर कंज शीश मम धारी । पूछिअ कुशल सप्रेम सुखारी ॥ २४ ॥
मैं बोलौं अति हिय सकुचाई । कुशल नाथ पद दर्शन पाई ॥ २५ ॥
सीताराम मनोहर जोरी । दृग भरि लखौं विनय यह मोरी ॥ २६ ॥
त्रिभुवन सम्पति त्रणसम त्यागौं । सिय रघुबीर चरणरति मागौं ॥ २७ ॥
सपनेहुँ होइ न विषय विकारा । करिअ कृपा अस पवन कुमारा ॥ २८ ॥
नित नव सिय रघुवर पद प्रीती । बढ़ै सदा पावौं रस रीती ॥ २९ ॥
नाम रूप लीला अनुरागी । रहइ सदा मम मति रस पागी ॥ ३० ॥
कीजिअ ऐसी कृपा महाना । हे समर्थ सर्वज्ञ सुजाना ॥ ३१ ॥
तव ऐश्वर्य महान अपारा । सुर मुनि कोउ न जानन हारा ॥ ३२ ॥
ब्रह्म रुद्र श्रीपति भगवाना । तव प्रभाव त्रय देव न जाना ॥ ३३ ॥
जानि सकहिं का मनुज विचारे । विषय बिबश नित रहत दुखारे ॥ ३४ ॥
हे सिय रघुवर चरण पुजारी । बेगि लीजिये खबरि हमारी ॥ ३५ ॥
हौं अबोध जड़मति अज्ञानी । कीजिअ कृपा दास निज जानी ॥ ३६ ॥
शिशुपन ते हौं शरण तिहारी । कहौं काहि निज बिपति पुकारी ॥ ३७ ॥
दृगभरि निरखौं सीता रामहिं । सुषमाशील रूप गुण धामहि ॥ ३८ ॥
हौं पद कंज गहौं अकुलाई । स्वकर उठावहिं सिय रघुराई ॥ ३९ ॥
मिलहिं मोहिं आपन जन जानी । बिहँसि कृपा करुणा गुन खानी ॥ ४० ॥

दोहा—बचन सुधा ते सींचि मोहिं, कर सरोज शिर धार ।
पूछहिं दोउ हँसि कुशल मम, जीवनधन सरकार ॥

भक्तन जीवन प्राण धन, जय जय पवन कुमार ।
सीताशरण सदा रहौं, चरणन पर बलिहार ॥

———:———

ॐ विनय पत्रिका के पद ॐ

श्री जानकीजीवनकी बलिजैहौं । चितकहै रामसियापद परिहरि, अबनकहूँ चलि जैहौं ॥ उपजीउरप्रतीति सपनेहुँसुख, प्रभुपदबिमुखनपैहौं । मनसमेत या तनकेबासिन, यही सिखावन देहौं ॥ श्रवणनि और कथा नहिं सुनिहौं, रसना और न गैहौं । रोकिहौंनयन बिलोकतऔरहिं, शीशईशहीनैहौं ॥ नातोनेहनाथसोकरि सबनातोनेहबहैहौं । यहछरभारताहि तुलसीजग, जाकोदास कहैहौं ॥ १०४ ॥ अबलौंनशानी अबनानशैहौं । रामकृपा भवनिशा सिरानी, जागेअबनडसैहौं ॥ पायेउँनामचारुचिन्तामनि, उरकरतेनखसैहौं । श्यामरूप शुचिरुचिरकसौटी, चितकंचनहिं कसैहौं ॥ परवशजानि हँस्यो इनइन्द्रिन, निजवश होन हँसैहौं । मनमधुकर पनकैतुलसी, रघुपतिपदकमल बसैहौं ॥ १०५ ॥ सुनुमनमूढ़ सिखावन मेरो । हरिपदबिमुख लह्यो न काहुसुख, सठयेसमुझसबेरो ॥ बिछुरेशशिरबि मननयननिते, पावतदुखबहुतेरो । भ्रमतश्रमित निशिदिवस गगनमहँ, तहँरिपुराहुबड़ेरो ॥ यद्यपि अति पुनीत सुरसरिता, तिहुँपुर सुयश घनेरो । तजेचरण अचहूँनमिटति नित, बहिबो ताहूकेरो ॥ छुटैनबिपति भजेबिनरघुपति, श्रुतिसंदेहनिबेरो । तुलसिदास सबआश छांड़िकरि, होहुराम कोचेरो ॥ ८७ ॥

काहेतेहरिमोहिंबिसारो । जानतनिजमहिमा मेरेअघ, तदपि न नाथसँभारो ॥ पतितपुनीत दीनहित अशरणशरणकहत श्रुतिचारो । हौंनहिं अधमसभीत दीनकिधौं, वेद नमृषापुकारो ॥ गजगनिका खगब्याध पाँति, जहँ तहँहौहूँबैठारो । अबकेहिलाज कृपा निधान, परसतपनबारोफारो ॥ जोकलिकालप्रबलअतिहोतो, तुवनिदेशते न्यारो । तौहरि रोषभरोस दोषगुन, तेहिभजतोतजिगारो ॥ मसक बिरंचि बिरंचिमसकसम, करहुप्रभाव तुम्हारो । यहसामर्थअछतमोहिंत्यागहु, नाथतहाँ कछु चारो ॥ नाहिन नरकपरतमोकहँडर, यद्यपि सबबिधिहारो । यहबड़ित्रास दासतुलसी प्रभु, नामहुँ पापनजारो ॥ ९४ ॥ असहरि करतदासपरप्रीति । निजप्रभुता बिसारि जनकेवश, होतसदायह रीति ॥ जिनबांधे सुर-असुरनागनर, प्रबलकर्म की डोरी । सोइअविछिन्न ब्रह्म जसुमति हठिबाँध्यो सकत न छोरी ॥ जाकीमायावश बिरंचिशिव, नाचतपारनपायो । करतलतालबजाय ग्वालजुवतिन तेहिनाच नचायो ॥ विश्वंभर श्रीपति त्रिभुवनपति, विश्वविदित जगलीक । बलि सों कछुनचली प्रभुता बरु ह्वै द्विज माँगीभीख ॥ जाकोनामलिये छूटतभव, जनममरन दुखभार । अंबरीस हितलागि दयानिधि सोइजन्मेउ दशबार ॥ जोगबिरागध्यान जपतपकरि, जेहिखोजत मुनि ज्ञानी बानरभालु चपलपाँमरपशु. नाथतहाँरतिमानी ॥ लोकपाल, जम, काल, पवन, रबि, शशि आज्ञाकारो । तुलसिदास प्रभु उग्रसेनके, द्वारवेतकरधारी ॥ ९८ ॥

बिरदगरीबनिबाजरामको । गावतवेदपुराण शंभुशुक, प्रगटप्रभाव नामको । ध्रुव-प्रहलाद, बिभीषण, कपिपति, जड़, पतंग, पांडव, सुदामको । लोकसुजस परलोक

सुगति, इनमेंकोहै रामकामको ।। गणिकाकोलकिरात आदिकवि, इनते अधिक बामको। बाजिमेध कबकियोअजामिल, गजगायो कबसाम को ।। छलीमलीनहींनसबहीअँग, तुलसी सोछीनछामको। नाम नरेश प्रताप प्रबलजग, जुगजुग चलतचामको ।।६६।। जाउँकहाँ तजि चरणतुम्हारे। काकोनामपतितपावन जग, केहिअति दीनपियारे ।। कौनदेव बरियाय बिरद हित, हठिहठि अधमउधारे। खग, मृग, व्याध, पषान, बिटप, जड़, यवनकवनसुरतारे ।। देव, दनुज, मुनि, नाग, मनुज, सब, मायाविवशबिचारे। तिनकेहाथदासतुलसीप्रभु, कहा अपनपौ हारे ।। १००।। हरितुम बहुतअनुग्रहकीन्हों। साधनधाम विबुधदुर्लभतन, मोहिकृपा करिदीन्हों ।। कोटिनमुख कहिजात न प्रभुके, एकएक उपकार। तदपिनाथ कछुऔरमागिहौं दीजै परमउदार ।। विषयबारि मनमीन भिन्ननहिं,होत कबहुँ पलएक। ताते सहौं विपति अतिदारुण, जन्मत योनि अनेक ।। कृपाडोरि बंशी पदअंकुश, परमप्रेम मृदुचारो। एहि विधिबेधि हरहुमेरोदुख, कौतुकरामतिहारो ।। हैं श्रुतिविदित उपाय सकलसुर, केहिकेहिदीन निहोरे। तुलसिदास यहजीव मोहरजु, जोइ बाँधे सोइछोरे ।।१०१।।

कबहुँ सोकरसरोजरघुनायक ! धरिहौनाथ शीश मेरे। जेहिकरअभय कियेजन आरत, बारक बिवशनामटेरे ।। जेहिकरकमल कठोरशंभुधनु, भंजि जनकशंसयमेट्यो। जेहिकरकमल उठायबन्धुज्यों, परमप्रीति केवटभेंट्यो ।। जेहि करकमल कृपालुगीधकहँ, पिण्डदेइ निजधामदियो। जेहिकरकमल बिदारि दासहित, कपिकुल-पतिसुग्रीव कियो ।। आयोशरणसभीतबिभीषण, जेहिकरकमल तिलककीन्हों। जेहिकरगहि शरचाप असुरहति, अभयदान देवनदीन्हों ।। शीतलसुखदछाहँ जेहिकरकी, मेटतिपापतापमाया। निशिबासर तेहिकरसरोजकी, चाहत तुलसिदास छाया ।। १३८ ।। मैं हरि पतितपावन सुने। मैंपतित तुमपतितपावन, दोउबानक बने ।। व्याधगणिकागजअजामिल, साखि निममनिभने। और अधम अनेकतारे, जातकापैगनै ।। जानिनाम अजानिलीन्हें नरकजमपुरमने। दासतुलसी शरण आयो, राखियेआपने ।। १६०।। मनपछितैहै अवसरबीते। दुर्लभदेहपाय हरिपदभजु, करमबचन अरुहीते ।। सहसबाहु दशबदनआदिनृप, बचे न कालबलीते। हमहमकरि धन धामसँवारे, अन्तचले उठिरीते ।। सुनि बनितादि जानिस्वारथरत नकरुनेह सबहीते। अंतहुं तोहि तजैंगे पामर, तूनतजैअबहींते ।। अब नाथहिं अनुराग जागजड़। त्यागु दुराशाजीते। बुझै न कामअग्नि तुलसीकहुँ, विषयभोग बहुघीते ।। १६८ ।।

ऐसेहिं जनमसमूहसिराने। प्राणनाथरघुनाथ से प्रभुतजि, सेवतचरणविराने ।। जे जड़जीव, कुटिलकायरखल, केवलकलिमलसाने। सूखतवदन प्रशंसततिनकहँ, हरिते अधिककरिमाने ।। सुखहित कोटिउपाय निरन्तर, करतनपायँपिराने। सदामलीन पंथकेजल ज्यों, कबहुँनहृदयथिराने ।। यहदीनता दूरकरिबेको, बिबिधजतन उरआने। तुलसी चित चिंता न मिटै, बिन चिंतामणिपहिचाने ।। २३५।। जो पै जिय जानकीनाथनजाने। तौ सबकरमधरमश्रमदायक,ऐसेहिं कहतसयाने ।। जे सुरसिद्धमुनीश जोगविद, वेदपुराणबखाने।

पूजालेत देतपलटेसुख, हानिलाभ अनुमाने । काकोनाम धोखेहू सुमिरत, पातकपुंज पराने । विप्रवधिक, गज, गीध कोटिखल, कौनकेपेटसमाने ॥ मेरुसेदोष दूरिकरिजनके, रेणुसेगुण उरआने । तुलसिदास तेहि सकलआश तजि, भजहिं न अजहुँसयाने ॥ २३६ ॥ जाकेगतिहैहनुमानकी । ताकीपैज पूजिआई, यह रेखाकुलिशपषानकी ॥ अघटित घटन सुघट विघटन, ऐसीविरदावलि नहिं आनकी । सुमिरत संकटसोचविमोचन, मूरतिमोद निधानकी । तापर सानुकूलगिरजाहर, लखनरामअरुजानकी । तुलसीकपिकी कृपाविलोकनि, खानि सकलकल्यानकी ॥ ३० ॥

रघुपतिभगतिकरतकठिनाई । कहतसुगम करनीअपार, जानैसोइजेहिबनिआई ॥ जोजेहिकलाकुशल ताकहँ सोइ, सुलभसदासुखकारी । सफरीसनमुख जलप्रवाह, सुरसरी बहैगजभारी ॥ ज्योंशर्कराखमिलै सिकतामहँ, बलते नकोउविलगावै । अतिरसज्ञ सूक्ष्मपिपीलिका, बिनप्रयासही पावै ॥ सकलदृश्यनिजउदर मेलि, सोवै निद्रातजि जोगी । सोइहरि पदअनुभवैपरमसुख, अतिसयद्वैत वियोगी ॥ शोकमोहभयहरष दिवसनिशि, देशकालतहँ नाहीं । तुलसिदास येहिदशाहीन संशय निर्मूलनजाहीं ॥१६७॥ जानत प्रीतिरीति रघुराई । नातेसब हातेकरि राखत, रामसनेहसगाई ॥ नेहनिबाहि देहतजिदशरथ, कीरतिअचल चलाई । ऐसेहुपितुते अधिकगीधपर, ममतागुनगरुआई ॥ तियबिरही सुग्रीवसखालखि, प्राण प्रिया बिसराई । रणपरयोबन्धुबिभीषणहीको, सोचहृदय अधिकाई ॥ घर गुरुगृह प्रियसदन सासुरे, भइ जबजहँपहुनाई । तबतहँकहि शबरीकेफलनिकी, रुचिमधुरीनपाई ॥ सहजस रूप कथामुनिबरणत, रहतसकुचिसिरनाई । केवटमीत कहेसुखमानत, वानरबन्धु बड़ाई ॥ प्रेमकनौड़ो रामसोप्रभु, त्रिभुवन तिहुँकालनभाई । तेरोरिणीहौं कह्योकपिसो, ऐसो मानेकोसेवकाई ॥ तुलसीरामसनेहशीललखि, जोनभगतिउरआई । तौतोहि जनमिजायजननी जड़, तनतरुनता गँवाई ॥ १६४ ॥

रघुवररावरि इहैबड़ाई । निदरिगनी आदर गरीब पर, करतकृपा अधिकाई ॥ थकेदेव साधन करिसब, सपने हु नहिं देतदिखाई । केवट कुटिलभालु कपि कौनप, कियो सकलसँगभाई ॥ मिलि मुनिबृन्द फिरत दण्डकबन, सो चरचौनचलाई । बारहिंबार गीध शबरीकी, बरणत प्रीतिसोहाई ॥ स्वानकहेते कियोपुरबाहर, यती गयन्दचढ़ाई । तियनिन्दक मतिमन्दप्रजारज, निजनयनगर बसाई ॥ यहिदरबार दीनकोआदर, रीतिसदाचलि आई । दीनदयालदीनतुलसी की, काहुन सुरतिकराई ॥ १६५ ॥ ऐसेराम दीनहितकारी । अतिकोमल करुणानिधान, बिनस्वारथ परउपकारी ॥ साधनहीन दीननिज अघवश, शिला भई मुनिनारी । गृहतेगवनि परसिपदपावन, घोरश्रापतेतारी ॥ हिंसारतनिषाद तामसबपु, पशुसमान बनचारी । भेंटेउहृदयलगाय प्रेमवश, नहिंकुलरीतिबिचारी ॥ यद्यपि द्रोहकियो सुरपतिसुत, शरणगये भयहारी ॥ बिहँगजोनि आमिषअहारपर, गीधकौन व्रतधारी । जनकसमान क्रियाताकी निजकर सबभाँति सँवारी ॥ अधमजाति शबरीजोषितजड़, लोक

वेदतेन्यारी। जानिप्रीति दैदर्श कृपानिधि, सोउ रघुनाथ उधारी॥ कपिसुग्रीवबन्धुभय व्याकुल, आयोशरणपुकारी। सहिनसके दारुणदुखजनके, हत्योबालिसहिगारी। रिपुको अनुज विभीषणनिशिचर, कौन भजनअधिकारी। शरणगये आगेह्वै लीन्हों, भेंटयोभुजा पसारी॥ अशुभहोइ जिनकेसुमिरनते, वानररीछविकारी। वेदबिदित पावनकिये तेसब, महिमानाथ तुम्हारी॥ कहँलगिकहौं दीनअगणित, जिनकोतुम विपतिनिवारी। कलिमल ग्रसित दासतुलसीपर, काहे कृपाबिसारी॥ १६६॥ तूदयाल, दीनहौं, तूदानि हौंभिखारी। हौंप्रसिद्धपातकी, तुपापपुञ्जहारी॥ नाथ तूअनाथको, अनाथ कौनमोसो। मोसमानआरत नहिं, आरतिहरतोसो। ब्रह्मतू हौं जीव, तूठाकुर हौंचेरो। तातमात गुरुसखा, तु सबविधि हितुमेरो॥ तोहिमोहिं नातेअनेक, मानिये जोभावै। ज्योंत्यों तुलसीकृपालु, चरणशरण पावै॥ ७६॥

और कहिमांगिये, कोमागिबोनिवारै। अभिमंतदातारकौन, दुखदरिद्र दारै॥ धरमधाम रामकाम, कोटि रूपरूरो। साहब सबविधिसुजान, दान खडगसूरो॥ सुखमय दिनद्वैनिशान, सबकेद्वार बाजै। कुसमय दशरथकेदानि, तैं गरीवनिवाजै॥ सेवाबिन गुन बिहीन, दीनतासुनाये। जे जे तैं निहालकिये, फूलेफिरतपाये॥ तुलसिदास जाचकरुचि, जानिदानदीजै। रामचन्द्रचन्द्रतू, चकोरमोहिंकीजै॥ ८०॥ सुनि सीतापति शीलस्वभाउ। मोदनमनतनपुलक नयनजल,सोनर खेहरखाउ॥ शिशुपनते पितुम तु बन्धुगुरु, सेवक सचिव सखाउ। कहतरामबिधुबदनरिसौहैं सपनेहुँलख्योनकाउ॥ खेलतसंग अनुजबालकनित, अनट अपाउ। जीतिहारि चुचुकारि दुलारत, देतदिवावतदाउ॥ शिलासाप सन्तापविगतभइ, परसतपावनपाउ। दईसुगति सो नहेरिहरषहिय, चरणछुयेको पछिताउ॥ भवधनुभजि निदरि भूपति, भृगुनाथ खाइ गे ताउ। छमि अपराध छमायपायँपरि, इतो न अनतसमाउ॥ कह्योराज बनदियोनारिवश, गरिगलानिकोराउ। ताकुमातुकोमनजोगवत ज्यों, निजतन मर्मकुघाउ॥ कपिसेवावशभयेकनौड़े, कह्योपवनसुतआउ। देवेकोनकछू रिणियाँहौं, धनिकतु पत्रलिखाउ॥ अपनायेसुग्रीव बिभीषण, तिननतजे छलछाउ। भरतसभासनमानिसराहत, होतनहृदयअघाउ॥ निजकरुणा करतूति भगतपर, चपत चलतचरचाउ। सकृतप्रणामप्रणत यशबरणत, सुनत कहतफिरिगाउ॥ सुमिरिसुमिर गुणग्रामरामके, उरअनुरागबढ़ाउ। तुलसिदास अनयास रामपद, पाइहै प्रेम उसाउ॥ १००॥

दीनकोदयालुदानि दूसरोनकोऊ। जाहिदीनतासुनावौं, देखौंदीनसोऊ॥ सुरनर मुनिअसुरनाग, साहिब तो घनेरे। (पै) तौलौं जौलौं कृपालुरावरे, न नेकुनयनफेरे॥ त्रिभुवन तिहुँकालविदित, वेदवदतचारी। आदि-अन्त-मध्यराम, साहिबीतिहारी॥ तोहिमागि मागनो न, मागनो कहायो। सुनिस्वभावशीलसुयश, जाचनजनआयो॥ पाहन, पशु, बिटप, बिहंग, अपनेकरिलीन्हें। महाराजदशरथके! रंक रायकीन्हें॥ तू गरीबकोनिवाज, हौंगरीवतेरो। बारककहियेकृपालु! तुलसिदासमेरो॥ ७८॥

रामरामरम रामरामरट, रामराम जपजीहा । रामनाम-नवनेह-मेहको, मन हठि होइपपीहा ॥ सबसाधनफल कूपसरितसर, सागर सलिलनिराशा । रामनाम-रतिस्वाति-सुधासुभ, सीकरप्रेमपियासा ॥ गरजितरजि पाषानबरषि, पवि, प्रीतिपरखि जियजानै । अधिकअधिकअनुराग उमगिउर, पर परमितिपहिचानै ॥ रामनामगतिराम नाममति राम नामअनुरागी । ह्वै गये, हैं, जेहोहिहैं आगे, तेइ त्रिभुवनबड़भागी ॥ एकअंग मगअगमगवन कर, बिलम न छिनछिनछाहैं । तुलसीहितअपनो अपनीदिशि, निरुवधिनेम निबाहैं ॥ ६५ ॥

कबहुँ अम्ब अवसरपाय । मेरिऔसुधिद्याइबी, कछु करुणाकथाचलाय ॥ दीन सबअङ्गहीन, छीन, मलीनअघीअघाय । नामलैभरैउदर एक, प्रभुदासिदासकहाय ॥ बूझिहैंसोहैकौन कहिबी, नामदशाजनाय । सुनतरामकृपालुके मेरी, बिगरिऔबनिजाय ॥ जानकी जग-जननि जनकी, कियेबचनसहाय । तरै तुलसीदास भव, तव, नाथ गुणगणगाय ॥ मारुति मन रुचि भरत को, लखि लखण कही है ! कलि कालहु नाथ ! नामसों परतीति-प्रीति, एक किंकर की निबहीहै ॥ सकल सभा सुनि लै उठी, जानी प्रीति रही है । कृपा गरीबनिवाज की, देखत गरीब को साहिब बाँह गही है । बिहँसि राम कह्यो 'सत्य है, सुधि मैं हूँ लही है । मुदित माथ नावत, बनी तुलसी अनाथ की, परी रघुनाथ हाथ सही है ॥ २७६ ॥

यहविनती रघुबीरगोसाईं । औरआशविश्वास भरोसो, हरोजीवजड़ताई ॥ चहौंनसुगति सुमति संपतिकछु, रिधसिध बिपुलबड़ाई । हेतुरहित अनुरागरामपद, बढ़ै अनुदिनअधिकाई ॥ कुटिलकर्म लैजाहिंमोहि, जहँजहँ अपनी बरिआई । तहँतहँ जनिछिनि छोहछाड़िये, कमठअण्डकीनाई ॥ याजगमें जहँलगि यातनकी, प्रीतिप्रतीतिसगाई । तेसब तुलसिदासप्रभुहीसों, होहिंसिमिटिइकठाईं ॥ १०३ ॥ ऐसोकोउदार जगमाहीं । बिनसेवा जोद्रवैदीनपर, रामसरिस कोउनाहीं ॥ जोगति जोगविराग जतनकरि नहिंपावत मुनिज्ञानी। सोगतिदेत गीधसबरीकहँ, प्रभुनअधिक जियजानी ॥ जोसंपतिदशशीश अर्पिकर, रावणशिवसोंलीन्हीं । सोइसंपदा बिभीषणजनको, सकुचसहितहरिदीन्हीं ॥ तुलसिदास सब भाँति सकलसुख, जोचाहसि मनमेरो । तो भजुराम कामसबपूरण करैंकृपानिधितेरो ॥१६२॥

एकै दानिशिरोमणि साँचो । जोइजाच्यो सोइजाचकताबश, फिरिबहुनाच न नाचो ॥ सबस्वारथी असुरसुर नरमुनि, कोउनदेत बिनपाये । कोशल पालकृपाल कलपतरु, द्रवतसकृतशिरनाये ॥ हरिहुँऔरअवतारआपने राखीवेदबड़ाई । लेचिउरानिधि दईसुदामहिं, यद्यपिबालमिताई ॥ कपि, सबरी, सुग्रीव, बिभीषण, कोनहिंकियोअयाची । अबतुलसिहि दुखदेत दयानिधि दारुणआशपिशाची ॥ १६३ ॥ जोमोहिंराम लागतेमीठे । तोनवरस-षट रस-रसअनरस, ह्वै जाते सबसीठे ॥ बंचकबिषयविविधतनधरि, अनुभवे सुने अरुदीठे । यह जानतहौं हृदयआपने, सपनेनअघायउबीठे ॥ तुलसिदासप्रभु सों एकैबल, बचनकहत अति ढीठे । नामकीलाज रामकरुणाकर, केहिनदिये करचीठे ॥ १६६ ॥ कबहुँक हौं यहिरहनि रहौंगो । श्रीरघुनाथ कृपालकृपाते, संतस्वभावगहौंगो ॥ जथालाभ संतोषसदा, काहूसोंकछु

नचहौंगो । परहितनिरतनिरंतरमनक्रम, वचननेमनिवहौंगो ॥ परुषवचन अतिदुसहश्रवण सुनि, तेहिपावकनदहौंगो । विगतमान समशीतलमनपर, गुननहिं दोषकहौंगो ॥ परिहरिदेह जनित चिंतादुख, सुखसमबुद्धिसहौंगो । तुलसिदास प्रभुयहिपथ रहि, अविचल हरिभक्ति लहौंगो ॥ १७२ ॥ जाकेप्रियनरामवैदेही । तजियेताहि कोटिवैरीसम, यद्यपिपरमसनेही ॥ तज्योपिताप्रहलाद विभीषण, बन्धु भरतमहतारी । बलिगुरुतज्यो कंतव्रजवनितन, भयेमुद मंगलकारी ॥ नातेनेह रामके मनियत, सुहृद सुसेव्यजहाँ लौं । अंजन कहा आँख जेहिफूटै, बहुतककहौं कहाँलौं ॥ तुलसीसोसवभाँति परमहित, पूज्यप्राणतेप्यारो जासोंहोय सनेह रामपद एतोमतोहमारो ॥ १७४ ॥

यहियतकृपा ललीसीताकी । नवधाभगति ज्ञानकाकरना, रहीनशंक वेदगीताकी ॥ वेदपुराण कहावतपटमत, करतवादनर वपुवीताकी । मगरकरत अरूझोनहिंसुरझो मिटीन एक द्वैतभयताकी ॥ जाकीओर तनकहँसिहेरत, करतसहाय रामजनताकी । "श्रीअग्रअली" भजु जनकनन्दिनी पापभण्डार तापरीता की ॥१॥ हौंतोविहारीसियाजू चाहै देखो न देखो मोको । आचारज बाँहहमारी, गहिशरण विहारीकारी, दैवास विहारेलोको ॥ चाहैदेखो० ॥ शृङ्गारहमारो दीन्हों, हियभाव विहारोदीन्हों, सुपुत्तकीन्होंहितोको ॥ चाहैदेखो० ॥ हौं पापन कोमैं रूपा, यह गिनतनहीं भवकूपा, अव विरदआपनोरोको ॥ चाहैदेखो० ॥ क रही जोपैन सम्हारो, करिहौंमैंकाहनिहारो, सौन्दर्य विदित सवलोको ॥ चाहैदेखो० ॥२॥

यों सुनिलीजै दीदी विनतीमोरी ॥ हौं तो तेरीचरणकीचेरी, शरणपरी हौंतोरी । नामधाम शुभठाम चरणतुव, और न आशामोरी ॥ यों० ॥ तुमहीं ने तो कीन्हकृपा, गुरुदेव मिलाये मोरी । तुमबिन परमकृपालु अहेतुक, औरअहै जगकोरी ॥ यों० ॥ लीन्ह बराह जन्मभगिसुमिरण, धर्मधकलमाधोरी । सकृतप्रमाण चहतप्रीतमतव, सोऊ बनतनथोरी ॥ यों० ॥ चहौंनसुगति सुमतिसम्पतिकछु, लोकमानरिमबोरी । सौन्दर्य प्रेमप्रवाह चरणतव सुमिरणसोतवसोरी ॥ यों० ॥३॥ प्रीतम श्यामसुजानसुनो, मनहूँमेंगुनोकछु स्तुतिमोरी । जीव-तुम्हारो तुम्हींरखवारो तुम्हरोहिंशासनडोरी । प्रभाभानुजिमि अंशतुम्हारो, निजमायामें फँसाये । कृपाकीन्ह सवसुखसत्तनको, ज्ञानविरोध जनाये ॥ रूपरहितको रूपबनाये, वेद पुराणहुँगाये । पुनि करुणाकरि आपहुआये, निजमारग सिखलाये ॥ योनिभ्रमत मानुषतन दीन्हों, कृपाकीन्हबहुतेरो । अबगुरुदेवकृपाकीमूरति, अपनायेजगफेरो ॥ अबचाहतमन प्रभु से मिलिये, निजस्वरूप सुखपाऊँ । परप्रभु आप कृपाबिनमगपग, पलकहुँ आइनपाऊँ ॥ दैवशक्ति अद्भुतहैमाता, त्रयआवरणअनूपा । षटविकार जससर्पविलक्षण घोरमहाभव कूपा ॥ तुमस्वतन्त्र सर्वज्ञकृपानिधि, सर्वशक्ति विस्तारा । भक्तउधारण व्रतअपनायो, होय उधारहमारा ॥ आखिर तो अपनावहुगेही, शरणागतनहिंत्यागा । व्याकुलहौं सौन्दर्य मिलन को, पाययोफल मनलागा ॥ राजकुमार नाथतुमजानो, नीति अनेकप्रकारा । जामेमन मेरो अकुलायो, होवैवेगिसहारा ॥४॥

प्रीतमजू हौंबिनती केहिभाँतिकरौं । जड़ताजाइ विषमउरबैठी, बुद्धिभ्रमितसुख साधनपैठी । तत्त्वविचार हृदयनहिंदीठी ॥ प्रीतम जू० ॥ सहजप्रकाश कृपाकोपाऊँ, तबमल नाथ स्वरूप समाऊँ । दिव्यधाम लीलागुणगाऊँ ॥ प्रीतम जू० ॥ केवलआश शरणहौंचेरी, साधनऔरन अवगुणढेरी । अब सौन्दर्य मनाबनवेरी ॥ प्रीतम जू० ॥४॥ भजुमनसियानाम सुखदाई । सीतासीतामधुरमधुरजपि, रामदरश शिवपाई ॥ सूपनखासियनामनिदरिनिज, नाककानकटवाई । प्रथमहिंसीतासुमिरिबिभीषण, लंकाधिपकहवाई ॥ सीसुखवर्धनताभव तारक, अमृतस्वादसोहाई । सोकहतहिंसियजनवशहोवहिं, तासुनिभानभुलाई ॥ रामहिंसौंपि नामनिजजापक, अभयकरहिंचितचाई । । हर्षणनामसुधाअसपीपी, जियबजगतभलभाई ॥ ११६॥ हमारीसियस्वामिनिसरकार, करुणामयीकृपाकीमूरति, कोमलचित्तउदार ॥ बिना-हेतुजीवनप्रतिपालनि, लीन्हेसबछरभार । विधिहरिहरहुशक्तिसहजाकहँ, ध्यावततनमनवार ॥ निरखतभौंहँकरैंजगकारज, गुनिसेवासुखसार । भलोचोपजसतसहौंसियको, परयोताहिके द्वार ॥जगतआशरंचहुनहिंहियमहँ, सीतहिंसकलसम्हार । हर्षणविषयविहीनप्रेमचह, सेवन सियसाकार ॥ १४८ ॥ शरणतकिआयोराजकिशोरी । सपनेहुँअन्यद्वारनहिंदेखेव, अवनजाउँ कहुँभोरी ॥ तुम्हरोमेजोभोजनपइहौं, रूखोसरोनकोरी । नीचऊँचसेवासब करिहौं, तवप्रसन्न हितत्रोरी ॥ श्रीपदकमलदरशनितलहिहौं, द्वारपरेसुखसोरी । ब्रह्मानन्दसुखहुविसरइहौं, परमानन्दहिलोरी ॥ रावरिकृपादृष्टिरसबरसनि, पाइरहौंरसघोरी । हर्षणविनयधरौहिय स्वामिनि, लहौंगुलामीतोरी ॥ १३५ ॥

महिमाअपरम्पारसियाकी । सुमिरिसुमिरसुखसानहुमनुआँ, चरितचन्द्रिकाराम प्रियाकी । बालमीकवरणेउरामायण, कहेउसत्यशुचिबातहियाकी । यहिमहँमहतकथासर्वत्रहि-केवलजनकरायविटियाकी ॥ जोकछुभयोजोहोइहैजगमहँ, सोहैप्रभुताजीवजियाकी । निर्मल सरससबहिसुखदायक, सदापकरसमधुरहियाकी ॥ आनँनअमृतअकथअनूपम, चिन्मय-लीलाप्राणप्रियाकी । हर्षणसमुझिशरणगहुताकी, जेहितेरामसमर्थ धियाकी ॥ १३०॥ रटोरे रामरामदिनराती । यथाजपतनितशम्भुशिवासह, रामरामरसमाती ॥ नामअहारअहैतिन-केरो, तेहिविनप्राणनछाती । नामप्रभावयथारथजानत, विषयसुधाकरिभाती ॥ शतकरोर रामायणतेरे, रामनामलियराती । मुक्तिहेतुकाशीउपदेशत, जीवशरणसरवाती ॥ काहूमुख श्रीनामश्रवणसुनि, नृत्यततनपुलकाती । हर्षसोखमानिशिवकेरो, जपहिरामलवलाती ॥ १८॥ रामनामकलिकामदभाई । सुरसुरभीसुरतरुसमसोहै, भक्तजननसुखदाई ॥ प्रीतिप्रतीतिसुरो तिहिंसेवत, अभिमतआशपुराई । विरतिविवेकभगतियज्ञयोगहु, तीर्थदानजपताई ॥ जहँलगि साधनवेदसुबर्णित, कलिमहँश्रमफलदाई । कलियुगकेवलनामअधारहिं, भुक्तिमुक्तिसबपाई ॥ चारहुँयुगपरतापनामको, त्रिजगत्रिकालमहाई । हर्षत्रिसत्यनामतजिकलियुग, अन्यगतीनहिं नाई ॥ १६२ ॥ पतितउधारनअवधकिशोर । सन्तशास्त्रगुरुकहेउबुझाई, रक्षकरामनऔर ॥ गौतमतियगतिसुखहिंप्रदायक, पापप्रनाशिअथोर । केवटगीधनिशाचरजेते, जीवनहतेकरोर॥

आमिषभोजीभयेसुपावन, जिन्हसुमिरतदुखछोर । जानहुरामकृपातेकेवल, भयेसबहिंशिर मौर ॥ पतितनपावनकरतनामनिज, शरणराखिरसबोर । हर्षणअजहुँशरणगहुप्रभुकी, नहि तोहिदूसरठौर ॥ २२० ॥ काहभयोपीछेपछताये । समयचुकेकछुहाथनआवे, रोरोदिवस गमाये । चिड़ियाँ चुनिगइखेतमिलैका, अहनिशिबैठिविताये । मृतकहियथाऔषधीसेवन, एकहुकामनआये ॥ जन्ममरणदुखसहैनित्यनित, कठिनकर्मफलपाये । कर्मविपाकसमयशिर धुनिधुनि, काहभयोचिल्लाये ॥ बनरोदनसमसुनैनकोऊ, तलफितलफिदुखताये । हर्षण सुमि-रिअबैरघुनाथहिं, जियकीजरनिजुड़ाये ॥ २२१ ॥ हाप्रभुकबहुँप्रेमपथपइहौं । यज्ञकुण्डनिज हियहिंविरचिबड़, विरहबन्हिभरिदइहौं ॥ अहमममअरुआशक्तिदुराशा, समिधासबिधि जलइहौं । सहजसनेहसुघृतदैआहुति, आत्मरमणअपनइहौं ॥ श्रीसियरामनामशुचिस्वाहा, अविरतयागअघइहौं । प्रेमवारितर्पणकरिअहनिशि, यग-भुकभलेरिभैइहौं ॥ इन्द्रियधेनुज्ञान दक्षेशहिं, देसबस्वत्वमिटइहौं । गहाभावअभिभूतस्नानी, रसमयहर्षसोहइहौं ॥ ३०४ ॥

भयभरिआयोशरणतिहारे । श्रवणसुन्योशरणागतवत्सल, रामप्रणतरखवारे ॥ तेहितेतक्योदौरिप्रभुपौरहिं, त्राहित्राहिसुखसारे । जहाँजाउँतहँजाउँडेराइ, कोउनहिंमोहि सम्हारे ॥ जेहिचितवौंतेहिभयपाऊँ, कातेकहौंपुकारे । भयमेंरहहुँभयहिंमेंविहरहुँ भयमयभोग हमारे ॥ तनमनबुद्धिभयहिंतेभरिगे, कम्पतआत्मअपारे । अभयदानिरघुनन्दनहर्षण, राखु अबहिंपचिहारे ॥ ३७२ ॥ मधुमयमुखमुसुकतमनहारी । कबहुँदिखायरामरघुनन्दन, हरिहौ विषयविकारी ॥ कृपादृष्टिकरुणाअवलोकनि, सुधासरिससुखकारी । मोहिंनहवायपियाय प्रेमपय, पोषिहौंअमियअहारी ॥ मृदुवतरानिकहहुगेआपन, नितसम्बन्धविचारी । भ्रमभय संशयग्रन्थिहृदयपुनि, नशिहौंकर्मअपारी ॥ मुखोल्लासलखिलखितवरसमय, होइहौंहृदय सुखारी हर्षणउरअभिलाषपूरकरि, हरहुतापधनुधारी ॥ ६१६ ॥ हरिकोहै रहिगोजगसाँच । वनिसंसारीजियवकल्पलौं, जानहुसबविधिकाँच ॥ रघुपतिकोकिंकरकहबाइ, दिवससातअरु पाँच । छुनहूँजियैगुनैभलमनुआ, लगैनयमकोआँच ॥ तैसेहिंप्रभुबिनगिनहुमोक्षपद, सेवक सेव्यनराँच । रामदासहै नरकहुँसेवत, सुखकरगुनोत्रिवाच ॥ असविचारिगहिशरणरामकी, त्राहित्राहिमुखयाच । हर्षणहर्षसमैहैसतसत, आनँदआनँदमाच । ३४४॥ कबमोहिंवरणकरहिं गेराम । समयसोहावनसोकबअइहैं, निजजनकहिहैंमाम ॥ विषयविकारविहायविविधविधि, दइहैंनिर्मलनाम । प्रीतिपुनीतसुभगमरिधारी, कबउमगीउरग्राम ॥ निजपदपाँवरिकरनिसेवा, विसरिबसइहैंधाम । नामरूपलीलारतप्रभुके रसिकनसंगललाम ॥ तवसुखीनित्यहै रहिहौं, रूपनिरखि अठयाम । कृपापंथ चितवतनिशिवासर, हर्षणजियतगुलाम ॥३७८॥

हेप्रिय हेसमर्थरघुवीर । वन्दिचरणकटुककर्शवाणी, विनवतहुमहिं अधीर ॥ कृपालाभहितयदपियोग्यता, नहिं किंचितममतीर ॥ महाकृपालुमौलितुमतद्यपि, करहुकृपा निरखेनिजनयनन, तुमजगपतिद्वौमीर ॥ करुणाहितलवलेशभक्तिको, भाषहुनहिंहियहीर । कौतुकपनतेप्रभुप्रसन्न है, हरुहर्षणभवभीर ॥३६६॥ जयजयजानकिजीवनराम । विरदगरीब

है हरुहर्षणभवभीर ॥ ३६६ ॥ जयजयजानकिजीवनराम । विरदगरीबनिवाजवदत सब, अधमउधारननाम । दीनबन्धुदुखदारिदशोषण, प्रणतहिपालनकाम । पतित अनेकउबारदयानिधि, दीन्हेंबहुविश्राम ॥ शास्त्रसन्तश्रुतिसाखिदेतसत, एकस्वलतिललाम । करिविश्वासआसअतिमनमें, लैजइहोनिजधाम ॥ प्रीतिपुनीतस्वसेवसौंपिसब, एकान्तिक अठयाम । हर्षणजियकीजरनिजुड़इहौं, सियाकृपासबठाम ॥४०४॥ ऐसोकबकरिहौरघुनन्दन रामरामसियारामरटौंगो, करिकरिकरुणाक्रन्दन ॥ विरहवन्हिजियजरतरहौंगो, फसेप्रेमके फन्दन । मैंअरुमोरत्यागिसबइच्छा, मनहिंबाँधिरसबन्धन ॥ योगक्षेमविनुद्वारहिंप्रभुके, रहबपरेनृपनन्दन । साधुस्वभावसरससतवानी, परहितरततजिद्वन्दन ॥ रागद्वेषकहुँभूलि नअइहें, शान्तहृदयजसचन्दन । शीलतोषसमदमधरिहर्षण, प्रेममतेजगवन्दन ॥४११॥ दिन प्रतिआयूजातचली । गईबहुतअबकिंचितबाकी, करीनरघुपतिभगतिभली ॥ कालकरालसबहिं धरिखायो, रहिगयमीजतहाथबली । जेहितेछूटैमहाभवबन्धन, करुउपायनृपलाललली ॥ साधनहीनशरणतकिआयो, चहतकृपाकेकोरपली । सीतारामनामनिसिवासर, नाचैमोरी जीभथली ॥ प्रेमापराभक्तिभलपाउँ, विहरतनवनवनेहगली । सर्वलोकशारण्यसुहृदवर, र खहुहर्षणदोपदली ॥ ४१६ ॥ जोप्रभुकृपाकबहुँलखिपावौं । तौमैंसत्यकहौंरघुनायक, जियकी जरनि जड़ावौं । तवपदप्रेमभीखभलमाँगी, विषयविकारबहावौं । निजसम्बन्धअचलकरि तुमतें, जगसम्बन्धजरावौं ॥ सबप्रकारसबसमयसुसेवा, पाइप्रहर्षथिरावौं । मुखोल्लासलखि रावरेकेरो, सुखसनिसदासुहावौं ॥ सन्तनसंगसनेशुचिसुखमय, हरियशसुनौंसुनावौं ॥ हर्षण हियअभिलाषअतिहियह, सीतारमणपुजावौं ॥ ४१९ ॥

प्रभुजीकिमिनहिंआयबचाओ । कृपासिन्धुकीसुधासीकरनि, मोहिंनहिंमरत पियाओ । पापतापत्रणराशिअमितजो, क्योंनहिंनाथजराओ । निजपदप्रेमअन्नदेवामी, काहेनभूखभगाओ ॥ रावररूपदरशकेप्यासे,अबतोआयपिलाओ । दीनबन्धुशरणागतवत्सल, अघनाशनकहवाओ ॥ पतितउधारनपतितउधारो, अबनहिंबेरलगाओ । हर्षगरीबगोहारसुनहु प्रभु, दौरिबेगइतआओ ॥४२७॥ कबमोहिंमिलिहौप्रीतप्यारे । लखिपदकमलसुधिहिबिसराई, गिरिहौंआतमअधारे ॥ निजकरकंजपरसिशिरपुनिपुनि, लइहौ ललकिहियारे । मुखमुसकाय कृपाकीचितवनि, देखिहौंदासदुलारे ॥ आपनभोगबनायभलीविधि, भोगिहोनाथहमारे । सहजस्वामिकैंकर्यसुखदलहि, रहिहैंहमहुँसुखारे ॥ सह्योकठिनजोक्लेशअबहिंलौं, भुलिहौं सबहिं सहारे । हर्षणकीवरविनयश्रवणसुनि, करहुदयासुखसारे ॥ ४३० ॥ लई है रामनाम की ओट । जासुसकृतउच्चारणतेरे, परैनयमकीचोट ॥ पापपरायणअधमशिरोमणि, यद्यपि सबविधिखोट । तदपिअगतिगुनिनामउदारा, करिहैंकृपाकिकोट ॥ गणिकायवनअजामिल तरिगे, नामसुमिरिइकहोंठ । प्रीतिप्रतीतिसुरीतविनाकहि, दुर्वलभेबहुमोट ॥ शास्त्रपुराणसन्त श्रुतिवरणत, महिमामहाअजोट । हर्षणशरणशरणहैताकी, जेहिवशहरिहियलोट ॥ ४३३ ॥ चारहुसाच्चदानन्दठामा । परब्रह्मरघुनायककेरे, नाम, रूप, लीला, अरु धामा ॥ प्रणत

पालकरुणावरुणालय, भक्तकल्पतरुललितललामा। भक्तिज्ञानवैराग्ययोगप्रद, सद्गुणसिन्धु सुखद अभिरामा॥ भुक्तिमुक्तिपभुप्रेमप्रदायक, जनहिं बनावतपूरणकामा। जोजोशरणगहे इनकेरी, सोसोसबहिलहेविश्रामा॥ मोरेऔरउपायनएकहुँ, कहौंप्रतीतियथाअठयामा। हर्षण हहरि हृदयअकुलायो, चारहुप्रीतिचहतगुणग्रामा॥ ४३७॥

सुनुकृपालुरघुवीरउदार। जोनिजचरणकमलमेंआश्रय, नहिंदेवहुसुखसार॥ तौकवपुत्रकलत्रछुड़ायो, गृहसम्पतिनवनार॥ रम्योरहततहँसबदुखसुखसहि, जिमिउलूकअँधियार। जोकरकमलअभयकरमोरे, शिरनहिंधरहुदुलार॥ तौकतअन्यालम्बछुड़ायो, अन्य आशऔद्वार। जोमुखकमलदिखाउबदुर्घट, मदनविमोहनहार॥ तौकतप्रकृतिप्रभानीरसता, बोधकरायनिकार। प्रेमविलक्षणदेहुनमोकहँ, तौकतरागसिगार॥ असकठोरपनउचितन नाथहिं, जायसुयशउजियार। शरणपर्योहर्षणवद्वारे ठुकरावहियाप्यार॥४३६॥ रामसिया सुखसारहमारे। विनतीसुनहुनाथदोउयहिकी, मोरेआत्मअधार॥ जोपैतजहुकाहवशमेरो, कितैजाउँकोतार। युगलचरणआश्रयगतियेकी, अशरणशरणसम्हार॥ तुमहिंककहुंशिशुमातु छोरिकै, कहौंजायसरकार। रोषैजननिचहैतेहिऊपर, तउतेहिऔरनद्वार॥ यद्यपिअतिहि अयानअभागी, अधमअज्ञअघकार। तदपिताहिहर्षणहिंदहहरत, शरणहिंआरपुकार॥४४२ मैंप्रभुविनतीकरैनजानी। महाराजकौशलकिशोरतव, सहजस्वांसश्रुतिबानी॥ हौंअल्पज्ञ मूढ़बिनविद्या, मूरखमतिहुँभुलानी। काहउचितकहिबोरघुबीरहिं, ज्ञाननहियमेंआनी॥ तेहि परकर्कशवानिभावविनु, सुनिकटुताविल्लानी। प्रेमभक्तिभावितनहिंमनुआँ, विषयविकार विकानी। सत्यासत्यविवेकएकनहिं, मोहनिशासुखमानी। हर्षणहायनजान्योविनयहु, प्रभु प्रसन्नहितसानी॥४४३॥ जेहिविधिवनैबनावैमोरी। करिनिर्हेतुकृपाकरुणानिधि, पालुविसारि ममखोरी॥ अटपटबानिचाहनिजवरणेउ, यदपिअयानअथोरी। तदपिउदारशिरोमणिरघुवर, बिरदकृपालुबड़ोरो॥ सुनियतश्रीसियनिन्दकरजकहिं, दियस्वधामसुखबोरी। पायोधाम विभीषणअविचल, लंकनृपतिपदकोरी॥ श्रवणसुयशसुनिशरणहिआयो, विषयवयारझकोरी। हर्षणअविनयछमियप्रेमदै, राखियनिजपदठौरी॥ ४४४॥

मोहिं चरण शरण अब तोर री सुन राजकिशोरी॥ केहि अघते पदपद्म छुड़ायो, मैं कछु समुझि न पाऊँ। निष्कासित ह्वै महाराज्य ते, विपिन बीच बिलखाऊँ॥ दीन मलीन छीन बल व्याकुल छुधित पिपासित आई। कारागार कठिन दुख झेलत लली! रावरो भाई॥ घेरे बृश्चिक व्याल चतुर्दिक अन्धकार घनघोरी री श्रीराज किशोरी॥ १॥ सुधि करि बाल माधुरी लाडिलि! हहरि हहरि रहि जाऊँ। को हौं कहाँ चल्यो का करिबो, आजु समुझि नहि पाऊँ॥ कै वह सत्य पकरि करि आँगुरि, जब वर बाग लखाऊँ। कै यह सत्य आज जब व्याकुल आकुल पेट खजाऊँ॥ कसाघात सहिजात न अब जो परत करोर करोर री, श्रीराजकिशोरी॥ २॥ सुधि आवति हरषाइ कबहुँ तुम सुमन माल पहिरायो। केश कलाप बीच कुसुमावलि निज कर कमल सजायो॥ करि अभिषेक आरती करि पुनि,

पायो संग पवायो। दै ताम्बूल संग संगहि तुम, अंगन गन्ध लगायो ॥ कित दुरि गई किलोल माधुरी, दृगको गयो अँजोर री ॥ श्रीराजकिशोरी ॥ ३ ॥ नवनिकुञ्ज भूलन की शोभा, अलिगन संग सोहाई। रक्षाबन्धन भ्रातृ द्वितीया दिन की दई बड़ाई ॥ बनरी वेष ब्याह की बेला लावा अर्पण शोभा। नवल लाल की नख-शिख सुखमा सुमिरत हूँ मन लोभा ॥ युगल रुप की युगल छटा वह लखि लखि भयो विभोर री श्रीराजकिशोरी ॥ ४ ॥ मान भ्रात को नात लाड़िली सब अपराध भुलाओ। निज विनियोग योग करि सीते! दीन जानि अपनाओ ॥ मुख त्रण दावि शरण अब आयो रक्ष रक्ष गोहराऊँ। करहु कृपा कल्याणि किशोरी! चरणन की रज पाऊँ ॥ दास किशोर विभोर पिओं रस, बनि मुख चन्द्र चकोर री श्रीराजकिशोरी ॥ ५ ॥ १ ॥

लाड़िली! कब उर आश पुजइहौ। कर करवा कोपीनवन्त करि, कञ्चन विपिन बसइहौ। तन, धन, भवन, सुवन, की ममता, मनते दूर भगइहौ। रसिकन चरण शरण महँ करिके, लीला रसहिं पियइहौ ॥ विरजातीर अधीर दीन के, मुख स्वनाम प्रगटइहौ। कोमल करन पोंछि अँसुअन कन, भइया कहि समुझइहौ ॥ विमल बदन शत इन्दु लजावन, हाय कबहिं दिखरइहौ ॥ २ ॥ कैसे उर की पीर सुनाऊँ। नवनागरि निमिवंश उजागिर गागर अघ की कहाँ दुराऊँ ॥ जन्म जन्म अभ्यस्त वृत्तिबश पुनि पुनि तहँ चलि जाऊँ। जहँ दुर्गन्ध द्वन्द दुख दारुण, मलही मल लिपटाऊँ ॥ अति अनाथ असमर्थ अलायक, कर्मन को फल पाऊँ। दीन मलीन मरत मोरी महँ, अकबकात बिललाऊँ ॥ सद्गुरु कृपा प्रताप जूठ के, श्रीपद भूलि न पाऊँ। तदपि निहारि अगति अति आपनि, टेरत महँ सकुचाऊँ ॥ ऐसो करहु कृपा करुणामयि, पदपंकज न भुलाऊँ। "दास किशोर" रूप रस मातो, सीते सीते गाऊँ ॥ ३ ॥ सीते! अब कब वे दिन अइहैं। मिथिलाधाम प्रेम मन्दिर को, विमल बास जब पइहैं ॥ करत कीर्तन रूप निहारत, सुधासमुद्र बिलइहैं। अइहैं मोर विभोर घेरिकै, सिय सिय कूक मचइहैं ॥ होतप्रात निर्वाहि नित्य को, सिद्धि सदन कहँ जइहैं। भाभी भ्रात चरण रजकन लहि, परमानन्द समइहैं ॥ बैठि प्रेमवट-निकट सखन महँ, प्रेमायन शुभ गइहैं। पाँवरि पूजि प्राणवल्लभ की, "शरण मन्त्र" रस छइहैं ॥ सुमिरि सुमिरि तव चारु चरित्रन, लीला मोद बढ़इहैं। "दासकिशोर" पुकारत तुम कहँ, तन, मन भान भुलइहैं ॥ ४ ॥

रघुवर विनय करत सकुचाऊँ। अति औदार्य विचारि रावरो, सोचि सोचि रहि जाऊँ ॥ जेती कृपा करी करुणानिधि, पक्षपात उरधारी। तेती शक्ति न समुझन हूँ की, कैसे सकौं उचारी ॥ मानवतन सर्वांग सुभगपन, अन्ध अपंग न कीन्ह्यों। विप्र वंश विद्या वैभवयुत, जनम पुण्य थल दीन्ह्यों ॥ बालपने ते संत संग है, सद्गुरु चरण मिलायो। दिव्य दिव्य लीला कलाप श्री,रामकथा रस पायो ॥ शिश्नोदर के पूरणकारण क्रम-क्रम सबइ गँवायो। महाराज को राजकुँवर, गलिन गलिन बिलखायो। क्रूर कृतघ्न, कुटिल कुलघाती,

हौं भरि पेट नसाऊँ। "दासकिशोर" किशोर सँवारहु, द्वार परो गोहराऊँ ॥ ५ ॥ प्यारे अबहुँ लेहु अपनाय। जुग जुग ते बिछुरे पद पंकज अब तो देहु दिखाय ॥ कहत जगत श्रीराम सखा मोहिं, रसिक रसिक गोहराय। हौं जस रसिक भक्त तुम जानहुँ, फटि न करे जो जाय ॥ नाम लजावत रस रसिकन को, पियत विषय विष धाय। तन भो छीन मलीन भयो मन, पर्यो पंथ कुम्हिलाय ॥ क्वासि क्वासि कौशल नृप नन्दन रघुनन्दन रस राय। प्राण सखे! अब प्राण पुकारत, आरत अति अकुलाय ॥ सहज सुहृद सरकार साँवरे! पर्यो शरण में आय। "दासकिशोर" किशोर जियावहु, रूप सुधा बरसाय ॥ ६ ॥ राघव! केहि विधि विनय सुनाऊँ। समुझि समुझि करतूति आपनी, मन ही मन हहराऊँ। मज्जन असन शयन की शोभा, सुमिर सुमिर रहि जाऊँ। का ते का है गयो पलक महँ गुन धुन कछुक न पाऊँ ॥ कमला कूल उपवनन विहरन, भरि भुज कण्ठ लगाऊँ। श्यामल वदन सरोज विलोकत नयनन को पाऊँ ॥ विविध विनोद मोद रस छाऊँ। सो अब गयो नयो जग है गयो, गलिन गलिन बिलखाऊँ॥ राम सखा सम्बधी हूँ है, नैनन नीर बहाऊँ जूठन कन विषयन के वीनत कूकर सों धुकि धाऊँ ॥ जैसो कियो तैस ही पायो, तुमहिं न दोष लगाऊँ। "दासकिशोर" निहोर कबहुँ तो चरणन की रज पाऊँ ॥ ७ ॥

रसिक वर करहु दिव्य रस दान। नित्य निकुंज मंजु मिथिलापुर, मध्य देहु शुभ थान ॥ बनराबेष मौर शिर धारे, सेहरे की झमकान। कज्जल रंजित नैन नुकीले, मन्द मन्द मुसुकान ॥ जावक जुत पद पंकज पावन, मनभावन गतिमान। भाँवरि भरत हरत मन बुधि चित, हियरो अति उमगान ॥ भरि भरि भुजन समाधि स्वाद को, अन्तःकरन लोभान। "दासकिशोर" विभोर बनावहु, ओ मेरे मेहमान ॥ ८ ॥ प्रीति प्रतीति प्रदायिनी सिय स्वामिनि मोरी। सतत प्रयास किशोरी करतीं कुटिल जीव उद्धारन को, अर्ज करत नित ही प्रीतम सों, कृपा कटाक्ष पसारन को। देखि न सकत काहु कर जोरे, ऐसी मृदुल स्वभाविनी सिय स्वामिनि मोरी ॥प्री०॥ सहज सनेह सखिन सन करतीं, विविध भाँति सनमानतीं। लीला ललित करन हित नूतन, चूक न हियबिच जानतीं। कंचन विपिन रास रस वर्षत, सखियन को सुखदायिनी सिय स्वामिनि मोरी ॥प्रीति०॥ कृपा हेतु लीला वपु धरतीं, साधन सुलभ सुझाती हैं, शरणागत रिपुहूको प्यारी, प्राणन सम अपनाती हैं। ऐसी कृपालु दयालुमयी नहिं, आन कोई वरदायिनी सिय स्वामिनि मोरी ॥ प्रीति० ॥ सब साधन अवलम्ब हीनहौं, कैसो करूँ कहाँ जाऊँ, विषय विलास बसेउ मन माहीं, निर्मल भगति कहाँ पाऊँ। सरयू अलि करि कृपा देहु मोहिं, प्रेम भगति अभिरामिनी सिय स्वामिनि मोरी ॥ प्रीति० ॥ ८ ॥

गरज है किशोरी जू हमें आप ही से, न मतलब हमें है जगत में किसी से। विरद आपका हमने जबसे सुना है, लगन लग गई है मिलन की तभीसे ॥ भला कैसे होता है विरही का जीवन, जरा पूछ लीजै हमारे ही जी से। यही एक जीवन में प्रण है हमारा, मिलेंगे किसी दिन सिया स्वामिनी से ॥ चहै स्नेहलता का चरण तरल तरना, जो होने को

होगा सो होगा इसीसे ॥ गरज० ॥ ६ ॥ स्वामिनी पद पंज की ओर, लगी है आशाओं की डोर । अन्तर की तुमहीं सब जानो, प्यासे हिय की हू पहिचानो । करिय कृपा की कोर ॥ प्रीति रीति की वेलि पुरानी, सूखि रही पाये बिन पानी । सींचिय अमिय बहोर ॥ स्वामिनि सहज स्वरूप सम्हारो, जानि अबोध न मोहि बिसारो । अब जनि हाथ खिकोर ॥ युगल स्वरूप सदा ही ध्याऊँ, रसना से रसमय गुण गाऊँ । करि दीजै रसबोर ॥ स्वामिनी० ॥ १० ॥ प्रणिपातहि ते सुप्रसन्नमना, करुणायतना मिथिलेश किशोरी । चित म्लान न काहु को देखि सकैं, सखि कोमल भाव भरी अति थोरी ॥ हमसो अपराधिनि की रुचि को, जोगवैं नित ही अपनो सुख छोरी । ऐसिउ कोमलताई "किशोर", न चित्त चढ़ै तेहि बुद्धि निगोरी ॥ ११ ॥ अपराध अगाध बिसारि सदा, करुणा उर में नित आनत हैं । गुन एकहुँ जो कहिं दृष्टि परै, तेहि बारहि बार बखानत हैं ॥ फुर झूठहुँ जो कहे रावर हौं, अपनो करिके तेहि मानत हैं । करनी न 'किशोर' बिचार करैं,उरभाव सदा पहिचानत हैं॥१२

तव पद पदुम विहाय न भरोसो मोहिं, जोहि जिय लीजै सुधि मेरी सिय स्वामिनी ॥ प्रभुहू ते सरस क्षमादि शुभ गुण सिन्धु,कीरति वदत श्रुति तेरी सिय स्वामिनी । ताहि बल सोच छाड़ि नाम लै उदर भरौं, निदरि गुणादि कृत केरो सिय स्वामिनी ॥ करत अधिक छोह तापै आप प्राणनाथ, जापै रंच तोर दृग हेरी सिय स्वामिनी । ताते बार बार कर जोरि माँगौं दीन होय, राखु निज चरणन नेरी सिय स्वामिनी ॥ द्रवत न कौशल किशोर तव नेह बिन, करै क्यों न कर्म योग ढेरी सिय स्वामिननी । जइहौं नाहीं द्वारे ते निकारे हू पै दया निधे !, साँची गुनि कहत हौं टेरी सिय स्वामिनी ॥ जौन माया योगी सिद्ध ज्ञानी विधि शम्भु हूँ लौं, निज बश माहिं किये जेरी सिय स्वामिनी । सोउ तव भृकुटी विलोकति रहति सदा, चाहति कटाक्ष कृपा केरी सिय स्वामिनी ॥ जनकदुलारी रघुवंश मणि प्राण प्यारी, अब जनि कीजै नेकु देरी सिय स्वामिनी । नेह लता प्रीतम सों दीजिये धरायकर कर, बिगरी बनैगी तव मेरी सिय स्वामिनी ॥ १३ ॥

यह विनती मिथिलेश किशोरी । क्षमि अपराध सकृत अवलोकहु, स्वामिनि मेरी ओरी । देखि परम अघ कोउ न पूछत, सबहिन नाक सिकोरी । स्वकृत कर्म को फल भोगत हौं, काहुहिं देहु न खोरी ॥ सब दिशि ते अवलम्ब हीन हौं, कासों कहौं निहोरी । "दासकिशोर" भुवन ठकुराइन, करहु कृपा कण कोरी ॥ १ ॥ अबकी लेहु बचाय किशोरी । कियो बहुत अपराध रावरो, लह्यो आज ताको फल सोरी ॥ गोपद जलद डूब मरि जाऊँ, कर्म विचारि अहै सोउ थोरी । नस नस माहिं कील ठुकि जावै, होइ अगति अंग अंग की मोरी ॥ अब अति ही अवलम्ब हीन भयो, सबहि रहे झकझोरी । "दासकिशोर" पाहि करुणामयि, परेउ शरण ताकौं कर जोरी ॥ २ ॥

रसना सीताराम उचारे । मंगल मंजुल मोद प्रदायक, सन्तन प्राण अधारे ॥ नाम रटत शिव शेष पवन सुत, गणपति भये सुखारे । सीताशरण शरणनामहिं की, आश

न अपर हमारे ॥ १ ॥ मन सिय राम चरण में लाग । महा मोह सोवत निशि वासर, भोर गयो अब जाग ॥ जगस्वारथी न तेरो कोई, सबकी आशा त्याग । सीताशरण शरण गहु प्रभु को, तो जागहिं ममभाग ॥२॥ रे मन सिय पद नाता जोड़ । श्रीसद्गुरुवर वचन मानि अब, जगके नाता तोड़ ॥ आगमनि सन्तजन वर्णत, विषय पिपासा छोड़ । सीताशरण शरण रहुं सिय की, सब जग ते मुख मोड़ ॥ ३ ॥ मानव मानवता न भुआओ। जगतनाथ सियराम चरण में, निशिदिन नेह लगाओ ॥ मिथ्या अति अभिमान करो मत, सन्त चरण चित लाओ । सीताशरण कृपा लहि तिन की, आवागवन मिटाओ ॥ ४ ॥ सीताराम भक्त हितकारी । कृपामूर्ति मिथिलेश किशोरी करुणानिधि धनुधारी । दीन गरीब जिनहिं अति प्यारे, जगकीरीति विस्तारी । सीताशरण कृपा करि हेरिय, आयो शरण तिहारी ॥५॥ रघुवर राखो मेरी लाज । करुणासिन्धु कृपामय विग्रह, ईशन के शिरताज ॥ आन्द कन्द द्वन्द दुख मोचन, राम गरीब निवाज । सीताशरण शरण में राखिये, अति उदार महराज ॥ ६ ॥

सिया जू तुम्हरो विरद उदार । करिआईं करि हो करवीं हौं, निज आश्रित पर प्यार ॥ एक बार दै दर्श दयामयि, हरहु दुसह दुख भार । गुन शीला पद कंज मंजु लखि, रहौं सदा बलिहार ॥ ७ ॥ लली जू! निजकर कंज सम्हारो । एक बार करि कृपा दृष्टि हँसि, मेरी ओर निहारो ॥ पतितनहूँ अपनाय करत शुचि, अस श्रुति सन्त पुकारो । सीताशरण दरश दै कीजिये, जीवन सफल हमारो ॥ ८ ॥ सिय जू सावरे गुण ग्राम । प्रणत आरति हरण अशरण, शरण परम ललाम ॥ सुनत गावत हरत अघ, दायक सकल अभिराम । चहत सीताशरण अविचल, प्रीति तुम्हारे नाम ॥ ९ ॥ सीता नाम सरस सुखदाई । अति ही मधुर सुधा हू जेहि सम, नाहिन उपमा पाई ॥ रघुनन्दन के प्रेम प्राप्तिहित नाहिन आन उपाई । सीताशरण सिया को सुमिरत, आवत हिय उमगाई ॥१०॥ सिया जू कब मोकहँ अपनाइहो । कबकरि कृपा कृपामयि स्वामिनि, सम दृग सन्मुख अइहो। मैं भरि प्यार चरण लपटाऊँ, निजकर कंज उठइहो । अंक बिठाय लगाय कंठ सों, कुशल पूछि समझइहो ॥ मृदु कर कंज फेरि शिर ऊपर, बार बार बलि जइहो । गुन शीला मुख चूमि लाड़िली !, आपन प्यार जनइहो ॥ ११ ॥ सिया जू मोहिं भरोस तिहारो । सुनु मिथिलेश कुवाँरि लड़ैती, आपन विरद सम्हारो ॥ नाते नाँव गाँव मिथिला के, और न कोउ हमारो । मनभावन की विनती है यह, चरण ते नहिं टारो ॥ १४ ॥ मोहिं तो भरोसो सियजू रावरे चरण को ॥ प्रेम राशि सो बसत पद दल रजकण, कौशलकिशोर मनमूरि सो हरण को । तव पद तरवा तरणि के किरण मेरे, कब उगिहैं उर मंगल करण को ॥ नेक नेह करत निहाल होन जन जिय, विरद उदार विन कारण को ॥१५॥ सियाजू सदा प्रणत हितकारी । करत स्वजन पर प्यार सर्वदा, जेहि विधि रहै सुखारी ॥ तैसेहि सब संयोग बनावत, दोष न नयन निहारी । जोगवति जन की रुचि निशि,वासर, पल पल ताहि सम्हारी ॥ सुनि

तव विरद शरण में आयो, जग की आश बिसारी। सीताशरण चरण दर्शन दे, मेटहु बिपति हमारी ॥ १६ ॥

सीते जीवन मूरि हमारी। प्राण प्राणकी जी कीजी हो, कबहुँ न पल छिन न्यारी ॥ तुम बिन जगत जहर सम लागत, स्वर्ग नर्क दुखकारी। दास रामहर्षण अब दीजै, दर्श हृदय मन हारी ॥१८॥ सीते कहहु कहाँ अब जाऊँ। चरण शरण तजि अन्य न जान्यो, एकहु ओर न ठाऊँ। जग में अपनोक है न कोई, सबके हृदय पिराऊँ। दास रामहर्षण त्रण रद गहि, परेउँ तुम्हारे पाऊँ ॥ १६ ॥ भजु मन जनकजा सुखभवन। गौर सूरति मधुर मूरति, राम राजिव रमन ॥ कृपारूप स्वभाव शुचि, निज जन हृदय रस भरन। मिटत छन में सब अमंगल, जो लहै पद शरन ॥ बिना इनके चरण सेये, भवतरहिं कहु कवन। नाम इनको जगत में विख्यात अशरन शरन ॥ पतित पाँवर दीन कुटिल, कुचालि अवगुन भवन। त्यागि तव पद जाहिं सीता, शरन काकी शरन ॥२०॥ कृपा अब कीजै श्रीजनकदुलारी। जगत जनक जगदीश जगत पति, रघुबर प्राण अधारी ॥ सुयश उदार अपार आपको, कहें श्रुति सन्त पुकारी। करुणाखानि क्षमा की मूरति सूरति की बलिहारी ॥ कृपा स्वारूप जगत हित कारिनि, दृग भरि मोहिं निहारी। गुनशीला निज चरण दरश दै, कीजिय मोहिं सुखारी ॥ २१ ॥ कृपा की मूरति सिय सुकुमारी। आपनि जानि विलोकिय मम दिशि, करुणा किरण पसारी ॥ मेरी एक अधार लाडिली, सब विधि तुम रिझवारी। गुनशीला सेवत पद पंकज, रहिहौं नित बलिहारी ॥ २२ ॥

कृपा करि हेरो श्रीराजकिशोरी। तव मुख चन्द्र पियूष पान हित हों मम नयन चकोरी। तजि तुम्हरे पद कंज कृपामयि, मन न जाय केहु ओरी। गुनशीला सेवौं पद पंकज निशिदिन प्रम विभोरी ॥ २३ ॥ तुम्हीं हो मम जीवन आधार डूबि रही अपार भव निधि में, कर गहि लेहु उबार ॥ तुम सम कवन अधम खल तारन, काको सुयश उदार। करुणा सिन्धु कृपा की मूरति सूरति पर बलिहार ॥ यद्यपि अवगुन भरी कुटिल मति, तदपि कहात तुम्हार। गुनशीला निज जानि लाड़िली, दर्शन दो इक बार ॥ २४ ॥ लाड़िलो मम जीवन आधार। हे सुखखानि स्वामिनी सीते भव भय भंजनि हार ॥ तजि तुम्हरे पद कंज किशोरी, जाऊँ केहि के द्वार। तुम बिन कवन समर्थ हेत बिन, तारक परम उदार ॥ तुम्हरी कृपा कोर नित चाहत, विधि हरि, हर जग सार। कीजै कृपा कोर निज जन गुनि, आय परेउ तव द्वार ॥ यद्यपि हौं अति अधम अपावन अघनिधि कुटिल गमार। तदपि श्रवण सुनि सुयश रावरो, विनती करूँ पुकार ॥ दीजै कृपा भीख अब मोकहँ, अपनी शरण विचार शरणागत रक्षक व्रत तुम्हरो,कर गहि लेहु उबार ॥ रीझै सेवा भजन बिना ही, ऐसो को रिझवार। कृपा कोर करि हे करुणामयि दीजै सकृत निहार ॥ मम हितकारी अपर न तुम सम, जो करि सकै उधार। सीताशरण चरण दर्शन दै, दर्शाइय निज प्यार ॥२५॥

तुम तजि और कौन पहँ जाऊँ। काको विरद उदार आप ते, जासु चरण गिरि जाऊँ। मेरी आश्रयदानि एक तुम, अपर काहि गोहराऊँ। अशरण शरण कृपा की

मूरति, गहौं तुम्हारे पाऊँ ॥ कीजे दया दयामयि निज गुनि, नित तव गुण गण गाऊँ। परम मधुर तर नाम सुधा तव, पियत न कबहुँ अघाऊँ । तुम्हरो शील स्वभाव परम प्रिय, हिय विचारि सुख पाऊँ । सीताशरण सिया स्वामिनि सुठि सूरति दृगन बसाऊँ ॥ २६ ॥ लगन मोहिं लागी सिय चरणन की। जग के सब सम्बन्ध स्वाद तजि, रहति सदा मति पागी ॥ सब व्यवहार भार सम लागत, लली चरण रति जागी। गुनशीला सिय कृपा कोर लहि, भई परम बड़ भागी ॥ सोइ पंडित बुधिवन्त चतुर सोइ, जो सियपद अनुरागी। बड़भागी सयाम सोई अति, सिय बिन सकल अभागी ॥ २७ ॥ दिवस निशि भजिये सीता-राम। शोक, मोह, दुख, द्वन्द, विनाशक, भवनिधि तारक नाम ॥ पूरणतम परमीश परम विभु, व्यापक जग अभिराम। गुणागार श्रुतिसार सबनि को, दायक वर विश्राम ॥ भजन, भक्ति, भावना विकाशक, पूरक सब मन काम। भक्त भाव ग्राहक सुषमानिधि, रससागर सुखधाम ॥ प्रेमिन प्राणाधार परम प्रिय, जिव जीवन धन श्याम। सीताशरण भजो सिय रघुवर, प्रमुदित आठो याम ॥ २८ ॥

वृथा इमि कोटिन जन्म गमाये। कृपासिन्धु सियराम चरण तजि जग सों नेह लगाये ॥ तन नाते अति प्रिय दृढ़ माने, प्रभु नाते बिसराये। याते जन्मेउ जोनि अनेकन, नाना विधि दुख पाये ॥ सुख पावन हित किये यत्न नित, सपनेहुँ शान्ति न पाये। नित नव नव अशान्ति दुख बाढ़े, मन मलीनता छाये ॥ जिन जिनको अपनो करि मान्यो, वे सब भये पराये। सीताशरण शरण रहु सिय की, कबहूँ दुख न सताये ॥२९॥ हे सिय स्वामिनि सुभग सलोनी साजन सुखद सरस सुख बोरी। प्रीतम प्रीति प्रतीति प्रदायिनि, पल पल पिय बिधु बदन चकोरी ॥ परिकर प्रेम पियूष पियावनि, कृपा मूर्ति मृदुचित अतिभोरी। गुनशीला पदपंकज पूजत पावौं परमानन्द अथोरी ॥ ३० ॥ निज कर कमल कृपा करि कबहूँ, स्वामिनि मम शिर परसि सिहैहो। मृदुल बचन कहि कहि दुलरावत; लाड़िलि आपन प्यार जनैहो ॥ मैं तव पद पंकज शिर राखौं, कर गहि आपनि अंक बिठैहो। गुन शीला लै विपुल बलैया कुशल पूँछि हँसि कण्ठ लगैहो ॥ ३१ ॥

राम रसिक रघुवर रस रसिया, सिय जीवन धन प्राण अधारे। परिकर प्रेम पियूष प्रदायक, प्रेमिन प्राण समान पियारे। कब मुख कन्ज मंजु दिखलैहो, रस लम्पट रस रूप उजारे। गुनशीला नव नेह भरे पिय, सुछबि निरखि निज सर्वस वारे ॥ ३२ ॥ हे रसिकेश रसिक रस लम्पट, कब निज चरण सरोज दिखैहो। मैं भरि प्यार चरण लट-टावौं हँसिकर गहि तुम कण्ठ लगैहो ॥ प्रेम सुधा सब पियत पियावत, मोहिं आपने रंग रंगि दैहो। गुनशीला गुन गन गर्बीले, रिझवीले मम आश पुजैहो ॥ ३३ ॥ सियजू सलोनी सुभग सुकुमारी सखियन के जीवन हो प्राण अधार। करुणा कृपा को क्षमामयि मूरति सूरति, पै हौं बलिहार बलिहार ॥ बिन कारण सबकी हितकारी, मृदुचित परमउदार हो उदार। दोष न काहू के अवलोकत, सब पर करत हृदय से प्यार ॥ पाँवर पतित अधम उद्धारक,

कीरति विमल जगत उजियार । प्रीति प्रतीति सुरीति प्रदायिनि, सुनत श्रवण दुख भरी पुकार ॥ कृपा विवश होवत अति व्याकुल, दुख मेटत करिके उपचार । देखि न सकत दीन कर जोरे. भोर सुभाव भरीं अति प्यार ॥ स्वामिनि कृपा कि दृष्टि वृष्टि करि,हरिये ममउर ताप अपार । गुनशीला मेरी सर्वसनिधि, रिझवीली मम प्राण अधार ॥ ३४ ॥ जौं मेरो अवगुन उरधारो । तो मिथिलेश नन्दिनी स्वामिनि, कोटि कलप नहिं मोर उबारो ॥ कौन सी क्रिया कीन्ह मैं नाहिन, यह संसार असार पनारो । करुणासिन्धु शील गुण सीमा दासो (श्री) युगल प्रिया न विसारो ॥ ३५ ॥

❀ श्रीसीताराम लीला माधुरी ❀

श्लोक :— चरितं श्री रघुनाथस्य शतकोटि प्रविस्तरम् ।
एकैकाक्षरं पुन्सां महा पातक नाशनम् ॥

महर्षि श्री वाल्मीकि जी लिखते हैं कि – श्रीरघुनाथ जी का चरित्र सौ करोड़ विस्तार वाला है । अर्थात् श्रीरामजी का चरित्र अनन्त अपार है । जिस चरित्र का एक एक अक्षर महान् पापों का नाश करने वाला है । भगवान् श्रीरामजी की लीला परम सुखद एवं रसद है । इसकी महिमा यद्यपि महर्षियों ने बहुत अधिक गाई है । विद्वानों को विदित ही है । प्रातः स्मरणीय पूज्य चरण गोस्वामी श्री तुलसीदास जी महाराज ने श्रीरामचरितमानस बालकाण्ड में लिखा है कि-विषयनि कहँ पुनि हरिगुण ग्रामा । श्रवण सुखद अरु मन अभिरामा ॥ अर्थात् भगवान् श्रीहरि के गुण समूह (लीला, कथा, चरित्र) भगवत् भक्तों के तो प्राणाधार हैं ही, विषयी जीवों को भी सुनने में सुखद और मन को परमानन्दानुभव कराने वाले हैं । महिमा इससे अधिक क्या कही जाय कि जिसका एक एक अक्षर "महापातक नाशनम्" सभी महान पापों का नाशक है । और—जे सकामनर सुनहिं जे गावहिं । सुख सम्पति नाना विधि पावहिं ॥ सुर दुर्लभ सुख करि जग माहीं । अन्तकाल रघुपति पुर जाहीं ॥ सकाम भाव से गाने और सुनने पर सुर दुर्लभ सुख भोग कर अन्त में रघुपतिपुर की प्राप्ति होती है । और निष्काम भाव से गाने या सुनने वाले को, लिखा गया कि लहैं भगति गति सम्पति नई ॥ अस्तु पाठकगण अब श्रीसीताराम लीला माधुरी का रसास्वादन करें ।

बृ० ब्र० सं० पा० २ अ०, पृ० ७७ से ७६ तक, में श्रीमन्नारायणजी ने श्रीलक्ष्मी जी से कहा कि—

एवं चतुर्विधादेवि ममपुर्योभवन्ति हि। माथुरेमथुरापुण्या तत्रवृन्दावनंवनम् ॥१॥ अयोध्याकोशलेदेशे सरयूपुलिनेस्थिता । यत्रराजीवपत्राक्षो रामोदशरथात्मजा

॥ २ ॥ परमात्मार्धभवं जानकीरूपात्वया । तयोर्लीलानुसन्धानान्मुक्तिर्भवति सद्गतिः ॥ ३ ॥ श्रीराममन्त्रराजस्य माहात्म्य गिरिजापतिः जानाति भगवान्येभुज्वलत्पावकलोचनः ॥ ४ ॥ रामोङेन्तोवह्निपूर्वो नमोन्तः स्यात्षडक्षरः । तारकोमन्त्रराजोऽयं संसारविनिवर्तकः ॥५॥ रमन्ते योगिनोऽनन्ते सत्यानन्दे चिदात्मनि। इतिरामपदेनासौ परंब्रह्माभिधीयते ॥६॥ रामेतिकिलवर्णाभ्यां ब्रह्मेतिप्रतिपाद्यते। कारणं सर्वभूतानामवधिः परिकथ्यते ॥ ७ ॥ ब्रह्द्गुणानामाधारो रहितः प्राकृते गुणैः । एष सर्वस्यविधृतिः सेतुः श्रुत्याप्रकीर्तितः ॥ ८ ॥

अर्थ—हे देवि ! इस प्रकार से मेरी चार प्रकार की पुरियाँ होती हैं। वहाँ पर मथुरा देश मथुरा नाम की पवित्र नगरी में वृन्दावन नाम का वन है ॥१॥ यह पूर्व अध्याय का सम्बन्ध कहा गया है। अब कोशल देश में अयोध्या नाम की नगरी है, जो सरयूजी के किनारे पर स्थित है। जहाँ पर कमल दल नैन चक्रवर्ति श्रीदशरथ नन्दन श्रीरामजी निवास करते हैं॥ २ ॥ हे लक्ष्मी ! उस स्थान में तुम श्रीजानकी जी के रूप में उन परमात्मा के वामभाग में विराजती हो। उन श्रीसीताजी की लीला अनुसन्धान करने से उत्तम सद्गति रूप मोक्ष होता है ॥ ३ ॥ उन श्रीरामजी के मन्त्र का महात्म्य गिरिजापति भगवान श्री शंकरजी जानते हैं। जिसके पुण्य प्रभाव से प्रचन्ड अग्नि के समान नेत्र (आँख) वाले हो गये ॥ ४ ॥ राम इस नाम के ङे विभक्ति अन्त में लगाने से और अग्नि बीज प्रथम लगाने से नमः अन्त में रख देने से छै अक्षर का श्रीराम मन्त्र होता है। इस मन्त्र को मन्त्रराज और तारकमन्त्र कहा जाता है। जो संसार चक्र से सर्वथा छुड़ा कर मोक्ष देता है॥ ५ ॥ जो मन्त्रराज सत् चिद् आनन्द स्वरूप और अनन्त हैं। जिसमें योगी लोग रमण करते हैं। ऐसे रामपदवाच्य परात्परब्रह्म इस नाम से कहे जाते हैं ॥६॥ रा और म केवल इन दो वर्णों से ब्रह्म इस शब्द का प्रतिपादन होता है। जो सभी भूतों का कारण और परमावधि कहा जाता है ॥ ७ ॥ ब्रह्म शब्द में बृहत् अर्थात् महान दिव्य गुणों का आधार और प्राकृतिक गुणों से रहित (जिसको उपनिषद् में महतोमहीयान) ऐसा कहा जाता है। यह महतो महीयान ही समस्त चारपाद विभूति को धारण करने वाला, और एक पाद विभूति से आत्मा को त्रिपाद विभूति में ले जाने के लिये सेतुभूत (पुल के समान) ऐसा श्रुतियों ने गान किया है ॥ ८ ॥

यदायदा हि धर्मस्यग्लानिर्भवति भूतले। अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजाम्यसौ ॥ ९ ॥ परित्राणायसाधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् । धर्म संस्थापनार्थाय जातोऽहं राम संज्ञया ॥ १० ॥ रामोनीलोत्पलश्यामे रामेकोदण्डभूषिते । भक्त्याऽभ्येति परंस्थानं वैकुण्ठाख्यं सुदुर्लभम् ॥११॥ चतुर्थी चात्रनिर्दिष्टा तदाख्ये कमनोद्भव । अभ्येति तेन रामं हि संत्यज्यान्यप्रयोजनम् ॥ १२ ॥

साधनानां तु संत्यागं नमः शब्दो हि शंसति । अनेन शरणापत्तिः परमैकान्तिनां मता ॥ १३ ॥ सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणागतान् । मोचयिष्यामि सर्वेभ्यः पापेभ्यो नात्र संशयः ॥ १४ ॥ दासोऽस्मीति च संधाय चाऽऽत्मानं परमेश्वरि । अभयं तस्यदास्यामि यो मामेतिनिरन्तरम् ॥ १५ ॥ गच्छंस्तिष्ठन्स्वप्नभक्त्या नमन्यो गुरुदेवयोः । दासोऽस्मीति निजं रूपं स्मरन्मुच्येत बन्धनात् ॥ १६ ॥ नारायणस्य ये भक्ताः शान्तास्तद्गतमानसाः । तेषां दासस्य दासोऽहमिति संचिन्तयेद्धिया ॥ १७ ॥ शङ्ख चक्रोर्ध्वपुण्ड्राद्यैर्दासवेषं विधाय च । शश्वत्तु देव देवेशं भक्त्या परिचरेद्धरिम् ॥ १८ ॥

अर्थ—इस पृथ्वीलोक में जब जब धर्म का संकोच (ह्रास) होता है। तब ये श्रीरामजी धर्म का उत्थान (उन्नति) और अधर्म को मिटाने के लिये आवश्यकतानुसार अपने अवतारों को प्रगट करते हैं ॥ ९ ॥ और दुष्टजनों का विनाश तथा साधुओं की भली भाँति रक्षा एवं धर्म की स्थापना करने के लिये मैं श्रीराम नामक परमात्मा से उत्पन्न होता हूँ ॥ १० ॥ वह श्रीराम जी नीलमणि के समान प्रकाशमान श्यामसुन्दर हैं, अनेक योगी लोग जिनमें रमण करते हैं। अथवा जो सबमय रमण करते हैं। और अपने आश्रित के दुःखदायियों को दण्ड देने के लिये धनुष धारण करते हैं। उन श्रीरामजी में भक्ति करने से अत्यन्त दुर्लभ बैकुण्ठ नामक परात्परस्थान साकेत धाम में चले जाते हैं ॥ ११ ॥ हे ब्रह्मा ! इस राममन्त्र में बीज के रकार में तादर्थ्य जो चतुर्थी निर्देश हुई है उसमें अन्य प्रयोजन को उपलक्ष करके अन्य रक्षकत्व को सम्यक् प्रकार त्यागने के लिये कहा गया है। अतः अनन्यता पूर्वक अकार त्रय सम्पन्न होकरके भजन करने से भक्त सम्यक प्रकार श्रीरामजी को प्राप्त हो जाता है ॥ १२ ॥ श्रीराम मन्त्र में जो नमः शब्द है, वह अन्य सभी साधनों का त्याग करना कहता है। इससे परमैकान्तिकों का सिद्धान्त, भली भाँति शरणागति (प्रपत्ति कही गई है ॥ १३ ॥ इससे जो भक्त सब धर्मों का सम्यक् त्याग करके केवल एक मात्र मेरी शरणागति धर्म को अपनाता है, उसको मैं समस्त पापों से मुक्त कर देता हूँ। इसमें कुछ भी संशय (सन्देह) नहीं है ॥ १४ ॥ हे परमेश्वरि ! जो जीव अपनी आत्मा को मैं भगवान् का दास हूँ, ऐसा अनुसन्धान करता है। उस भक्त को मैं अभय कर देता हूँ। जिससे वह निरन्तर मुझ में विलीन (आशक्त चित्त) रहता है ॥ १५ ॥ जो चलते बैठते, सोते समय स्वप्न में भक्ति पूर्वक गुरु और अपने इष्ट देव को नमस्कार करते हुये मैं भवद्दास हूँ, अपने स्वरूप का इस प्रकार स्मरण करता है तो वह जन्म और मृत्यु के बन्धन से छूट जाता है ॥१६॥ भक्त अपनी बुद्धिसे भगवान् के जो भक्त शान्त चित्त और तद्गत मन वाले भक्त हैं, मैं उनका दास हूँ ऐसा चिन्तवन करे। ॥१७॥ तप्त भगवदायुधों तथा ऊर्ध्व पुण्ड्रतिलक तुलसीमालादि भगवद्दास वेष धारण करके, समस्त देवताओं के भी परम देवता परात्परब्रह्म की भक्तिपूर्वक सेवा करता रहे ॥ १८ ॥

स सर्वसिद्धिमासाद्य ह्यन्ते रामपदं व्रजेत । चिन्तयेच्चेतसानित्यं श्रीरामः शरणंमम ॥ १६ ॥ चिद्रूपस्याऽऽत्मनोरूप पारतन्त्र्यं विचिन्त्य च । चिन्तयेच्चेतसानित्यं श्रीरामः शरणंमम ॥ २० ॥ अचिन्त्योऽपि शरीरादेः स्वातन्त्र्यं नैव विद्यते । चिन्तयेच्चेतसानित्यं श्रीरामः शरणंमम ॥ २१ ॥ आत्माधार स्वतन्त्रं च सर्वशक्तिं विचिन्त्य च । चिन्तयेच्चेतसानित्यं श्रीरामः शरणंमम ॥ नित्यात्मगुण संयुक्तो नित्यात्मतनुमण्डितः । नित्यात्मकेलि निरतः श्रीरामः शरणंमम ॥ २३ ॥ गुणलीलास्वरूपेषु मितिर्यस्य न विद्यते । अतोवाङ्मनसावेद्यः श्रीरामः शरणंमम ॥ २४ ॥ कर्त्तासर्वस्यजगतो भर्त्तासर्वस्य सर्वगः । संहर्त्ता कार्यजातस्य श्रीरामः शरणंमम ॥ २५ ॥ वासुदेवादिमूर्त्तीनां चतुर्णां कारणं परम् । चतुर्विंशतिमूर्त्तीनामाश्रयः शरणंमम ॥ २६ ॥

जो नित्यप्रति अपने चित्तवृत्ति से श्रीरामः शरणंमम इस मन्त्र का चिन्तवन करेगा, वह समस्त सिद्धियों को प्राप्त करके श्रीरामजी के धाम को जायेगा ॥ १६ ॥ अब चित्त से चिन्तवन करने का स्वरूप बताते हैं कि—जो चैतन्यशक्ति का भी आत्मा है, उसके रूप की परतन्त्रता विचार करके अपने चित्त से श्रीरामः शरणंमम ऐसा चिन्तवन करे ॥ २० ॥ यद्यपि वह परमपुरुष शरीराभिमानियों से अचिन्त्य भी है, तथापि किसी में स्वतन्त्रता नहीं है । ऐसा चित्त से चिन्तवन करते हुये श्रीरामः शरणं मम मन्त्र को जपे ॥ २१ ॥ श्रीरामजी ही समस्त आत्माओं के एकमात्र आधार और स्वतन्त्र हैं और सर्व शक्ति सम्पन्न हैं । चित्त से ऐसा चिन्तवन करते हुये, श्रीरामः शरणंमम जपे ॥२२॥ जो त्रिगुणमयिमाया के प्राकृतगुणों से रहित, और आत्मगुणों (अलौकिक दिव्यगुणों) से नित्य संयुक्त हैं, और जो आत्मा के भी आत्मा हैं। आत्मा ही जिनके अंग भूषण हैं । तथा समस्त आत्मायें ही जिनका नित्य विहार स्थल हैं, वह श्रीराम जी मेरे उपाय हैं ॥ २३ ॥ जिनके गुण, लीलायें एवं स्वरूप अनन्त हैं । जो मनवाणी से परे हैं, वेद जिन्हें नेति कहते हैं, यथा—नेति नेति जेहि वेद निरूपा । निजानन्द निरुपाधि अनूपा ॥ रा० च० मा० बा० कां० १४४ दो० ॥ ऐसे महामहिम्न श्रीरामजी मेरे उपाय हैं । मैं उन श्रीरामजी का रक्ष्य हूँ ॥ २४ ॥ जो समस्त जगत के कारण और सब जगत के भरणपोषण करने वाले, सर्व व्यापक, तथा उत्पन्न हुये समस्त जगत के संहारकर्त्ता श्रीरामजी मेरे रक्षक हैं ॥ वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध इन चतुर्व्यूहों के परमकारण और चौबीस अवतारों के आश्रय स्वरूप श्रीरामजी मेरे उपाय (रक्षक हैं ॥ २६ ॥

नित्यमुक्तजनैर्जुष्टो निविष्टः परमेपदे । परंपरगभक्तानां श्रीरामः शरणंमम ॥ २७ ॥
महदादिस्वरूपेण संस्थितः प्राकृतेपदे । ब्रह्मादिदेवरूपैश्च श्रीरामः शरणंमम ॥ २८ ॥
मन्वादिनृपरूपेण श्रुतिमार्गंविभर्त्तियः । यः प्राप्तेस्वरूपेण श्रीरामः शरणंमम ॥२६॥
ऋषिरूपेणयोदेवो वन्यवृत्तिमपालयत । योऽन्तरात्माचसर्वेषां श्रीरामः शरणंमम ॥३०

योऽसौसर्वतनुः सर्वः सर्वनामासनातनः । आस्थितः सर्वभावेषु श्रीरामः शरणंमम ॥ ३१ ॥
वहिर्मत्स्यादिरूपेण सद्धर्ममनुपालयन् । परिपातिजनान्दीन् श्रीरामः शरणंमम ॥ ३२ ॥
यश्चात्मानं पृथक्कृत्य भावेनपुरुषोत्तमः । आचार्यामावस्थितोदेवः श्रीरामःशरणंमम ॥३३॥
अर्चावताररूपेण दर्शनस्पर्शनादिभिः । दीनानुद्धरतेयोऽसौ श्रीरामः शरणंमम ॥ ३४ ॥
कौशल्याशुक्तिसंजातो जानकीकण्ठभूषणः । मुक्ताफलसमोयोऽसौ श्रीरामःशरणंमम ॥ ३५॥
विश्वामित्रमखत्राता ताडकागतिदायकः । अहिल्याशापशमनः श्रीरामः शरणंमम ॥ ३६ ॥

अर्थ—नित्य और मुक्त पार्षदों से सेवित परात्परधाम में रहने वाले, परमभक्तों के प्राप्य श्रीरामजी मेरे रक्षक हैं ॥ २७ ॥ एकपाद विभूति में महातत्त्व आदिक रूपों में स्थित, ब्रह्मा आदि देवताओं के स्वरूपों में प्रगट, अर्थात् भक्तों के भाव में रहने वाले, श्रीरामजी मेरे रक्षक हैं ॥ २८ ॥ मनु इत्यादि राजाओं के रूप से जो वेदमार्ग (सद्धर्म) की स्थापना करते हैं, और अपने यथार्थ रूप से जो प्राप्त होते हैं । ऐसे श्रीरामजी मेरे रक्षक हैं ॥ २९ ॥ जो सनकादिक ऋषियों के रूपों से वन में रहकर भजन की वृत्ति का पालन करते हैं । और जो सभी के अन्तरात्मा में निवास करने वाले हैं, वह श्रीरामजी मेरे रक्षक हैं ॥ ३० ॥ जो विराटरूप से अनेक शरीर, अनेक रूप अनेक नाम वाले हो गये । वह सनातन पुरुष सभी के भावों में स्थिर रहने वाले, श्रीरामजी मेरे रक्षक हैं ॥३१ फिर वही प्रभु मत्स (मछली) कूर्म (कछुआ) आदि वाह्य रूपों से भगवद्धर्म का पालन (रक्षण) करते हुये, शरणागत दीन भक्तों की भली भाँति रक्षा करने वाले, श्रीराम जी मेरे रक्षक हैं ॥ ३२ ॥ जो पुरुषोत्तम, परात्परब्रह्म अपनी आत्मा को देव रूप से अलग करके अर्चाविग्रह में स्थित होते हैं, वह श्रीराम जी मेरे रक्षक हैं ॥ ३३ ॥ पुनः जो अर्चावतार रूप से दर्शन देकर स्पर्श कराते हुये सेवा स्वीकार करके उद्धार करते हैं वह श्रीराम जी मेरे रक्षक हैं ॥ ३४ ॥ माता श्री कौशल्या रूपी शुक्ति (सीपी) से प्रगट होकर श्रीजानकीजी के कण्ठ के भूषण स्वरूप मुक्तामणि के समान जो श्रीरामजी हैं, वही मेरे रक्षक हैं ॥ ३५ ॥ श्रीविश्वामित्र जी के यज्ञ की रक्षा करने वाले, ताड़का को अपने वाण से गति प्रदान करने वाले, श्रीगौतम जी द्वारा दिये गये श्रीअहिल्याजी के श्राप को शमन (मिटाने) करने वाले श्रीरामजी मेरे रक्षक हैं ॥ ३६ ॥

पिनाक भंजनः श्रीमान्, जानकी प्रेम पालकः । जामदग्न्य-प्रतापघ्नः, श्रीरामः शरणंमम ॥ ३७ ॥ राज्याभिषेकसंहृष्टः, कैकेईवचनात्पुनः । पित्रादत्तवनक्रीडः, श्रीरामः शरणंमम ॥ ३८ ॥ जटाचीरधरोधन्वी, जानकीलक्ष्मणान्वितः । चित्रकूटकृतावासः, श्रीरामः शरणंमम ॥ ३९ ॥ महापञ्चवटीलीला, सञ्जातपरमोत्सवः । दण्डकारण्यसञ्चारी, श्रीरामः शरणंमम ॥ ४० ॥ खरदूषणविच्छेदी, दुष्टराक्षसभञ्जनः, हृतशूर्पनखाशोभः, श्रीरामः शरणंमम ॥४१॥ मायामृगविभेत्ता च, हृतसीतानुतापकृत । जानकीविरहाक्रोशी, श्रीरामः शरणंमम ॥४२॥ लक्ष्मणानुचरोधन्वी, लोकयात्राविडम्बकृत । पम्पातीरकृतान्वेषः, श्रीरामः

शरणंमम ॥ ४३ ॥ जटायुगतिदाता च, कबन्ध गतिदायकः । हनुमत्कृत साहित्या, श्रीरामः शरणंमम ॥ ४४ ॥

अर्थ—शंकरजी के धनुष को तोड़ने वाले, अत्यन्त शोभा सम्पन्न, श्रीजानकी जी के प्रेम का पालन करने वाले, परशुरामजी के प्रताप को भंग करने वाले श्रीरामजी मेरे उपाय हैं ॥ ३७ ॥ राज्याभिषेक की घोषणा करके प्रसन्नता बढ़ाकर, फिर श्री कैकईजी के वचनों से पिताजी के द्वारा दिया हुआ वन विहार करने वाले श्रीरामजी मेरे उपाय हैं ॥ ३८ ॥ जटा वलकल वस्त्र और श्रीजानकी जी एवं श्रीलक्ष्मणजी के सहित चित्रकूट में पर्णकुटी बनाकर रहने वाले श्रीरामजी मेरे रक्षक हैं ॥३९॥ पंचवटी में महानलीलाओं का परमउत्सव करने वाले, और दण्डक वन में विचारने वाले श्रीरामजी मेरे रक्षक हैं ॥४०॥ खरदूषण का बध करने वाले तथा और भी अनेकों राक्षसों को मारने वाले, शूर्पनखा की शोभा को हरण करने वाले श्रीराम जी मेरे रक्षक हैं ॥ ४१ ॥ माया मृग मारीच को मारने वाले, श्रीसीताजी के हरण होने पर वियोग में सन्तप्त होने वाले, श्रीजानकीजी के विरह में करुणा करने वाले, श्रीरामजी मेरे रक्षक हैं ॥ ४२ ॥ धनुषधारी श्रीरामजी अपने अनुगामी श्रीलक्ष्मण जी के सहित लोक लीला के व्याज से पम्पा सरोवर के तटपर श्री-जानकीजी को अन्वेषण करने श्रीरामजी मेरे रक्षक हैं ॥ ४३ ॥ जटायु और कबन्ध को गति देने वाले, श्रीहनुमानजी से सहायता लेने वाले श्रीरामजी मेरे उपाय हैं ॥ ४४ ॥

सुग्रीवराज्यदाश्रीशो, बालिनिग्रहकारकः । अङ्गदाश्वासनकरः श्रीरामः शरणंमम ॥ ४५ ॥
सीतान्वेषणनिर्मुक्त, हनुमत्प्रमुखव्रजः । मुद्रानिवेशितबलः श्रीरामः शरणंमम ॥ ४६ ॥
हेलोत्तरितपाथोधिदूर्तनिर्धूतराक्षसः । लङ्कादाहकरोधीरः श्रीरामः शरणंमम ॥ ४८ ॥
जानकीजीवनत्राता, विभीषणसमृद्धिदः । पुष्पकारोहरणाशक्ता, श्रीरामः शरणंमम ॥४९॥
राज्यसिंहासनारूढा, कौशल्यानन्दवर्द्धनः । नामनिर्धूतनिरयः श्रीरामः शरणंमम ॥ ५० ॥
यज्ञकर्त्तायज्ञभोक्ता, यज्ञभर्त्ता महेश्वरः । अयोध्यामुक्तिदः शास्ता, श्रीरामः शरणंमम ॥५१
प्रपठेयः शुभं स्तोत्रं, मुच्येतभवबन्धनात् । मन्त्ररचाष्टाक्षरोदेवः श्रीरामः शरणंमम ॥ ५१ ॥

सुग्रीव को राज्यदेने वाले, महानऐश्वर्य शाली बालि को मारने वाले, अंगद को आश्वाशन देनें वाले, श्रीरामजी मेरे रक्षक हैं ॥ ४५ ॥ श्रीहनुमानजी को प्रधानता में वानर समुदाय को भेजकर श्रीसीताजी का अन्वेषण कराने वाले और मणि-मुद्रिका में अपने प्रभाव को आवेशित करने (भर देने) वाले श्रीरामजी मेरे रक्षक हैं ॥४६॥ समुद्र को लाँघने का दूत के द्वारा राक्षसों के बल को मर्दन कराकर लंकादाह कराने वाले श्रीरामजी मेरे रक्षक हैं ॥ ४७ ॥ क्रोध करके समुद्र में पुल बाँधकर लंका के किला को घेर कर रावण इत्यादि राक्षसों का बध करने वाले श्रीरामजी मेरे रक्षक हैं ॥४८॥ श्रीजानकी जी के जीवन की रक्षा करने वाले, और अनुराग पूर्वक पुष्पक विमान पर चढ़ने वाले श्रीरामजी मेरे उपाय हैं ॥ ३९ ॥ राज्यसिंहासन पर बैठने वाले माता श्रीकौशल्या जी के

अनुरागमय आनन्द को बढ़ाने वाले, अपने नाम के प्रभाव से आश्रितों के जन्म मरन और नरक को मिटाने वाले, श्रीरामजी हमारे रक्षक हैं ॥ ५० ॥ यज्ञों को करने वाले यज्ञों के भोक्ता, और यज्ञों को करने वालों के मनोरथों को पूर्ण करने वाले ईश्वरों के भी प्रेरक महाईश्वर, अयोध्या के जड़ चेतनात्मक सभी को मोक्ष देने वाले, सभी के शासन करने वाले श्रीरामजी मेरे रक्षक हैं ॥ ५१ ॥ जो कोई भी इस शुभ स्तोत्र को मन लगाकर पढ़ेगा, वह भव बन्धन से मुक्त हो जायगा। इस प्रकार यह अष्टाक्षर मंत्र के देवता अनन्तश्रियों को रमण करने वाले भगवान श्रीरामजी मेरे रक्षक हैं ॥ ५२ ॥

परात्पर श्रीसाकेतधाम में श्रीसीतारामजी का अवतार हेतु परस्पर सम्बाद....!

दो०—नित्य सच्चिदानंदमय बिलसत श्रीसाकेत। विहरत जहँ सीता रमण परिकर वृन्द समेत ॥ १ ॥ परम प्रभामय दिव्यतम अच्युत अमल अनूप। सास्वत सुन्दर एकरस धाम प्रेम रसरूप ॥ २ ॥

छं०—जहाँ न सृष्टि न प्रलय होत कबहूँ केहु काला। संतत लीला होति मधुर मन हरन रसाला ॥१॥ जहँ नहिं अग्नि न चन्द्र सूर्य किरणै न प्रकाशै। स्वयं प्रकाश स्वरूप धाम प्रतिभा प्रतिकाशै ॥२॥ सब धामन को मूल परम पावन ते पावन। जासु अंश सब धाम अमल अनवद्य सोहावन ॥ ३ ॥ जहँ नित नवल विहार करत सीतावल्लभ प्रभु। परतम परम परेश प्रेम पूरक उदार विभु ॥ ४ ॥ अज अनन्त अनवद्य अमल अविगत अविनाशी। अकथ अनीह अनूप अखिल जीवन उरबासी ॥ ५ ॥ व्यापक व्याप्य विभूति वदत वर विबुध वेद विद। कृपा सिन्धु कमनीय केलि क्रीड़ारत सतचिद ॥ ६ ॥

वार्ता—अपने परात्पर नित्य एक रस त्रिगुणातीत सच्चिदानन्द स्वरूप श्रीसाकेतधाम में परस्पर प्रेम रस में पगे हुये परंब्रह्म श्रीसीताराम जी एकान्त स्थल में विराजमान थे। नित्य परिकर वृन्द युगल मुखचन्द्र की माधुरी का चकोरीवत एकटक पानकर रहे थे। अनेकानेक वाद्यों की मधुर ध्वनि के साथ कोमल कलित कण्ठों से सुधा विनिन्दित स्वरों में दम्पति के गुणानुवादों के मधुरातिमधुर रसमय मंजुल गीतों का गायन हो रहा था। इस परम मंगलोत्सव के अवसर पर एकाएक श्रीकिशोरीजू का मुख मयंक मलीन हो गया। वह अपने को सँभाल न सकीं, प्रियतम की अंक में मूर्छा को प्राप्त हो गईं। श्रीजू के अभिन्नात्मा परिकर बृन्द विकल हो गये, विविधोपचार के पश्चात् श्रीजू प्रतिकस्थ (पूर्ववत स्वस्थ) हुईं, तब आश्चर्य चकित होकर श्रीरामजी ने कहा कि हे प्राण प्रिये! इस परमरसमय मंगलोत्सव के अवसर पर आपकी ऐसी विचित्र अवस्था क्यों होगई।

दो०---जिनकी कृपा कटाक्ष से, रमा उमा ब्रह्मानि । जग प्रसिद्ध ऐश्वर्य अरु, लह्यो अचल सनमान ॥७॥ जाकी महिमा अति अगम वेद न पावत पार। स्थिर गुण इकरस सदा चिन्मय दिव्य उदार ॥ ८ ॥ सहज सुहृदता तव निरखि हूँ मैं तव आधीन । भो उदास मुख मंजु क्यों कहिये प्रिये प्रवीने ॥ ८ ॥

छं०---हे मम जीवन मूरि यथा चिंता तव दूरी । कहिये कैसे होय यत्न करिहौं मैं भूरी ॥ १ ॥ तव मयंक मुख मधुर म्लीन नहिं सकौं निहारी । कहिये हृदय विचार वेगि हे प्राण अधारी ॥ २ ॥

प्रियतम के स्नेह पूर्ण बचनों को सुनकर श्रीजू ने कहा कि—

दो०--सावधान होकर सुनिय हे प्रियतम चितलाय। मम प्रसन्नता के लिये करिये वेग उपाय ॥१०॥ हम दोउन के अंश हैं, जगके सारे जीव । साधन धाम सुमुक्ति प्रद नरतन सब सुखसींव ॥ ११ ॥

छं०—तव माया वश मोह ग्रसे विषयनि अरुझाने । नहिं स्वरूप सुख लहत दिवस निशि रहत भुलाने ॥३॥ साश्वत दिव्य अखण्ड एक रस सुख किमि पावैं । पियत गरल सम विषय मानिसुख अपर न भावैं ॥ ४ ॥

अस्तु हे राजीवलोचन आप उन जीवों को सुखी करने का उपाय कीजिये । तब श्रीरामजी ने कहा :--

दो०:-- मेरे सतगुण रूप ही श्रीपति धरि बहुरूप। प्रगटत युग युग में सदा लीला करत अनूप ॥ १२ ॥ मत्सकूर्म वाराह बुध बावन नरहरि देह । धरत करत रसमय चरित पावन पगे सनेह ॥ १३ ॥

छंन्द :-- वेद, उपनिषद्, शास्त्र, स्मृति, संहिता, पुराना । काव्य और इतिहास मुनिन ने विपुल बखाना ॥ ५ ॥ तिन में येही कहा विषय सुख स्वप्न समाना। है केवल भ्रममात्र तदपि देवत दुख नाना ॥ ६ ॥

वेद तो मेरी ही दिव्य वाणी है वेदों के सारार्थस्वरूप उपनिषद शास्त्र संहिता पुराण स्मृति इतिहास मेरी प्रेर्णा से मनियों ने लिखे हैं । उन सभी ग्रन्थों में विषय सुख को झुँठा कहकर उनकी घोर निन्दा की है विषयानन्द को मायामय भ्रममात्र बतलाकर जीवों को विषय से विमुख होकर निष्कामकर्म, ज्ञान, योग उपासना, शरणागति प्रपत्ति, इत्यादि के द्वारा सुखी होने के अनेक साधन बतलाये है । तथापि यदि जीव सुखी न हो पाये, तो आप ही कहिये कि अब मैं क्याकरूँ । प्रभु के इन बचनों को सुनकर श्री किशोरीजू ने कहा कि--

दो०-नाथ कहा सो सत्य पर माया अतिबलवान । मोहत ज्ञानी मुनिन को उपजावत अज्ञान । १४। मोहे बिषई जीव तो क्या आश्चर्य महान । तव मायावश विषय ही लियो परम सुख मान ।१५। छं०--दिव्य धाम को दिव्य स्वाद सुख

कबहुँ न पायो। बीते कल्प अनन्त बुद्धि में विषय समायो ॥ ७ ॥ येही कारण प्रबलभयो विषयनि अनुरागा। दिव्य स्वाद किमि लहैं विषय सुख जात न त्यागा।८।

वार्ता—इसलिये हे जीवनधन! यदि आप समस्त जीवों को परमानन्द देना चाहते हैं, तो हम दोनों अपने इसी दिव्य विग्रह से पृथ्वीतल पर प्रकट होकर—

दो०—हिलमिल उनके साथ में निज ऐश्वर्य छिपाय। करि सुदिव्य पावन चरित दीजिय सुखी बनाय ॥१६॥ शब्द, रूप, रस, गन्ध अरु तव स्पर्शहिं पाय। तजि अनित्य जग के विषय प्रभु पद प्रीति बढ़ाय ॥ १७ ॥

छन्द :- शब्दादिक रस, रूप, गन्ध, स्पर्श भुलाने। जग में करि अपनत्व रहत विषयनि अरुझाने ॥ ६ ॥ हम दोउन के सरिस रूप, रस पावत नाहीं। याते स्वसुख भुलाय जगत में सतत भ्रमाहीं ॥ १० ॥

वार्ता- अस्तु हे जीव जीवन जू मृत्यु लोक के जीव जब हम दोनों के सौन्दर्य सागर मंगलमय दिव्य विग्रह को देखेंगे, तो अनायास ही अनित्यविषय, मद, मोह, ममता त्यागकर हम दोनों के चरणों में स्वाभाविक अनुराग करेंगे। क्योंकि सभीजीव सौन्दर्य एवं एकरस परमानन्द के उपासक हैं। परन्तु संसार में सौन्दर्य और सुख का तो केवल भास मात्र भाषित होता है सम्पूर्ण सौन्दर्य और एकरसपरमानन्द की अमृतमय मंजुल मूर्ति तो हमी दोनोंहैं। जो प्राणी मधुर शब्द में आशक्त हैं, उन्हें हम लोगों जैसा मधुर प्रिय शब्द अन्यत्र कहाँ और किस का मिलेगा। और जो जीव स्पर्श या रूपाशक्त एवं रसाशक्त हैं। उनको भी हमारे और आपके मृदुलाङ्गों जैसा दिव्य स्पर्श एवं हमदोनों के समान सच्चिदानन्दमय दिव्यरूप तथा हम दोनों के समान परम रस का अनुभव और गन्धाशक्त जीवों को हमारे और आप के श्री अंगों से बढ़कर दिव्य सुगन्ध भी प्राप्त न होगी। और लीलाशक्त जीवों को हमदोनों की लीला के समान परमानन्द प्रदायिनी मनोहारिणी रसमयि दिव्य मधुर लीला भी अन्यत्र न मिलने पर सभी जीवों का आकर्षण हम दोनों की ओर होना स्वाभाविक होगा। इस प्रकार सभी जीव सहज में ही परम सुखी हो जायेंगे यह सुनकर श्रीराम जी ने कहा कि, हे प्रिये—

दो० :- मेरे भय से ही सदा पवन, इन्द्र, दिनराय। विधि, हरि, हर, यह, काल, भू, मृत्यु हृदय डराय ॥ १८ ॥ जाको जो आयसु दई नियमित कारज माहिं। आलस तजि निज कार्य को, निशिदिन सतत कराहिं ॥ १९ ॥

छंद :- मच्छर से भयभीय अल्पबल मनुज विचारे। मेरो भय विसराय भरे अभिमान अपारे ॥ ११ ॥ मानत वेद न शास्त्र मुनिन मर्याद न माने। विषय भोग आशक्त करत सब कृत मनमाने ॥ १२ ॥

दो०:--चलत कुमारग पर सदा पावत दुःख अपार। कर मीजत पछितात बहु, हा हा करत पुकार ॥२०॥ खेलूँ इनके साथ नित मेरे मन यह चाह। किन्तु न देखत मोहिं यह चलत आपनी राह ॥ २१ ॥

छंद--प्रति क्षण यह अपराध करत मेरो भय त्यागी। प्रिये तुमहिं किन कहहु होहिं कैसे बड़भागी ॥ १३ ॥ निशिदिन मम प्रतिकूल कर्म करि अति दुख पावत। हठवश करि अन्याय माथ पीटत पछितावत ॥ १४ ॥

वार्ता—तब श्री किशोरी ने करुणापूर्ण हृदय से वात्सल्य भाव विभोर होकर कहा कि--हे भक्त वत्सल प्रभो! संसारी माता पिता भी तो अपने बालकों के दोष नहीं देखते हैं।

दो०—जिमि पितुमातु अबोधशिशु, दोषन देखत नाहिं। तिमि मायावृत जीव को आपहु क्षमाकराहिं ॥ १५ ॥ इन के मन अरु बुद्धिपर, माया पटल विशेषि। मायावरण हटे बिना सकत न आपहिं देखि ॥ २३ ॥ छंद – उनमें नहिं सामर्थ कि माया पटल हटावैं। फिर उनमें बहु दोष प्रभो! केहि हेत बतावैं ॥१५॥ माया बन्धन प्रबल आपही सकत छुड़ाई। जीवों में अकलंक वृथा प्रभु रहे लगाई ॥ १६ ॥ दो०—पितु को अति ऐश्वर्य लखि, बालक नहीं डराहिं। जीव न डरते आप से तदपि अदोष सदाहिं ॥ २४ ॥ शिशु के टेढ़े चरित लखि मातु पिता सुख लेत। प्यार सदा करते उन्हें, सपनेहुँ दोष न देत ॥२५॥ छद:- सच्चे जग पितु आप सुहृद करुणा गुण सागर। क्षमा कृपा आगार प्यार वर्धक नव नागर ॥ १६ ॥ नाथ न होइय रुष्ट जीव सब शिशु समुदाई। अति अबोध यहि लागि विषय में रहे भुलाई ॥ १७ ॥

वार्ता—हे राजिव नयन! आप जीवों के अवगुणों पर दृष्टि न डालकर उनकी दुर्दशा पर विचार कीजिये। हे हृदयेशजू! यदि इन बेचारों को ज्ञान होता तो क्या कभी भूल कर भी यह आपको विस्मृत करते। इन सबको, आपसे विमुख करके विषय में फसाना एकमात्र आपकी बलवती त्रिगुणमयी माया का काम है। तथापि हे प्रभो! आपने--

दो०: – जीवन के अवगुणन लखि प्रबल निठुरता धारि। क्षमा कृपा करुणा स्वगुण दीन्हे सकल बिसारि ॥ २६ ॥ विश्वविमोहन दिव्य तन, कृपा मूर्ति सुखसार। पृथ्वी मण्डल में प्रभो! आप लेहिं अवतार ॥ १७ ॥

तब श्रीराम जी ने कहा--

छंद :-- जीवों पर करि कृपा लेउँ यदि मैं अवतारा। प्रगटौं मैं भू लोक होय आश्चर्य अपारा ॥ १८ ॥ अज अनन्त अनवद्य एक अविगत अविनासी। गुणातीत निर्लेप अगुन निरवधि सुखरासी ॥ १६ ॥ दो०--व्यापक ब्रह्म अनीह अरु, अलख अनादि अनूप। चहूँ वेद ने इस तरह कहा हमार स्वरूप ॥ २८ ॥ यदि मैं प्रगटौं देह धरि वेद मृषा हो जाहिं। तो अनर्थ हो जगत में यही भाव मन माहिं ॥ २६ ॥

वार्ता--मेरे प्रगट होने पर मेरे अज अचिंत्य अगोचरादि नाम व्यर्थ हो जायेंगे। तब लोग वेदों को भी झूठा मानेंगे, जो परम अर्थ का मूल होगा क्योंकि सृष्टि का सारा व्यापार वेदों के आधार से ही होता है। तब श्रीकिशोरी ने कहा कि--

दो०:--वर्णन करि करि वेद नित, नेति नेति कहि देहिं। याते सतत अदोष हैं, वेद झूँठ नहिं होहिं ॥ ३० ॥ तब पुनः श्रीरामजी बोले कि--

दो०--शरणागत रक्षण करन, मैंने दृढ़ व्रत कीन। प्रिये दोष मेरो कहा, जीव शरण नहिं लीन ॥ ३१ ॥ छन्द--मुझसे मिलने हेतु जीव इक पैर बढ़ावै। मैं कोटिन पग धाय मिलूँ सो अति सुख पावै ॥ २० ॥ प्रियतम के इस प्रकार शब्दों को सुनकर श्रीजी प्रेम पूर्वक प्रभु का हाथ पकड़कर कहने लगीं कि--

छंद--चहत अपेक्षा आप कहावत परम उदारा। तो दयालुता कवन अगर शिशू करहिं पुकारा ॥ २१ ॥ वार्ता--हे प्राणेश ! भीख माँगने पर भोजन कराना या त्राहि माम् पाहिमाम् कहने पर रक्षा करना न तो उदारता ही है न अभय प्रदानता या वात्सल्यता है। अस्तु बिना प्रार्थना किये ही उन सब जीवों पर कृपा करना चाहिये यथा अबोध बालक पिता से यह नहीं कहते कि मैं आपका बालक हूँ, आप हमारी रक्षा कीजिये। तथापि पिता अपनी ओर से प्यार पूर्वक बालक को सारी सुविधायें देता है। उसी प्रकार सृष्टि के सभी जीव आपकी सन्तान हैं। आप अपनी ओर से ही कृपा करके उनको सुखी बनाइये--

दो०--हम दोउन की प्राप्ति हित कीन्हों तप अति घोर। स्वायंभूमनु नारि युत अतिशय प्रेम बिभोर ॥ ३२ ॥ दर्शन देकर दुहुँन कहँ, आप दियो बरदान। उसे न अब बिसराइये, हे जीवनधन प्रान ॥३३॥ छंद--मनु भय दशरथ भूप अवध में लसत उदारा। सतरूपा तिन नारि कौशिला विमल विचारा ॥ २२ ॥ ब्रह्मादिक सुर निकर सतत पथ लखत तुम्हारी। करके कृपा अपार पधारिय हे धनुधारी ॥२३॥ दो०-दशरथ कौशल्या सुवन आप बनिय सरकार। मैं विदेह मखभूति ते प्रगटौं प्राण अधार ॥ ३४ ॥ श्रीमिथिलेशहिं बाल सुख दइहौं परम अनूप। करि शिशू चरित रसाल बर, धरि प्रिय मंजु स्वरूप ॥३५ छं०--हम दोउ चलि भूलोक महिं धरि मानव देहा। प्रेम गंग प्रगटाइ सबनि हिय भरें सनेहा ॥ २४ ॥ ब्रह्मादिक सुरनिकर जौन सुख लगि ललचावैं। मिथिला अवध मझार नित्य सोइ सुख बरसावैं ॥ २५ ॥ दो०--मेरे मन अभिलाष यह, पुरवहु हे प्राणेश। यद्यपि परम स्वतन्त्र प्रभु पूरणतम परमेश ॥३६॥ सुनत सिया के बैन इमि, भरे वात्सल प्यार। जीवों पर अनुराग लखि, हँसि बोले सरकार ॥ ३७ ॥ छंद-ऐ हो प्राण अधार प्रिये मम जीवन मूरी। क्षमा कृपा की मूर्ति मधुर मंजुल गुण भूरी ॥ २६ ॥ बिनसाधन निरपेक्ष जीव पर प्यार अपारा। धन्यवाद बहुँबार न कोउ तुम सरिस उदारा ॥ २७ ॥ दो०--जबकी मुझमें ही नहीं, ऐसी कृपा उदार। तब तुमको तजि हे प्रिये, को ऐसो रिझवार ॥ ३८ ॥ जीवों के कल्याण हित यह मारग बलवान। निर्हेतुकि तुम्हरी कृपा,

साधन एक प्रधान ॥ ३६ ॥ छं०--सब जीवों की सतत सकल विधि रक्षणकारी ॥ तुम अति मृदुल स्वभाव बारबहु मैं बलिहारी ॥ २८ ॥ हौं स्वतन्त्र सब भाँति स्ववश करि सकै न कोई । अजित सकै नहिं जीत चहै कैसोउ भट होई ॥ २६ ॥ दो०—बिन कारणहिं कृपालुता, तव लखि के मन मोर । विश्वविमोहन मुग्ध हो, रहूँ सदा वश तोर ॥ ४० ॥ प्राण प्रिये तुमने कहा, मैं अब करिहौं सोइ । दिव्य चरित भूलोक में, करौं दिव्य तन होय ॥४१॥ छंद--मैं द्रुत अवध मझार बनौं नृप दशरथ लाला । तुम प्रगटौ मिथिलेश यज्ञ बनि मधुर सुबाला ॥ ३० ॥ करि प्रिय दिव्य चरित्र प्रीति रस रीति दिखाई । परमानन्द समुद्र माहि सब जाहि डुबाई ॥ ३१ ॥ वार्ता--प्रभु के इस प्रकार वचन सुनकर श्रीकिशोरी जू ने प्रसन्नता पूर्वक गाढ़ालिंकन करके श्रीरामजी से कहा कि—

छंद--प्राण प्राण के प्राण जीव के जीवन नाथ । सब सुख के सुख सार प्यार वर्धक तव गाथा ॥३२॥ तुम तजि हे प्राणेश जीव को कौन सम्हारे । प्रभु को सुयश अपार सतत श्रुति सन्त पुकारे ॥ ३३ ॥ याते कृपानिधान प्रभु अब अति करुणा कीजिये । मोह ग्रसित सब जीव हैं शरण आपनी लीजिये ॥ ३४ ॥ वार्ता –इस प्रकार परस्पर प्रेममय वार्तालाप के पश्चात अभिन्नात्मा भगवान श्रीसीतारामजी ने अपने कुछ परिकरों को लीला की भूमिका बनाने के लिये श्रीअवध एवं मिथिला जी में भेज दिया । इधर श्रीअवध धाम में सिंहासनासीन चक्रवर्ति सम्राट श्रीदशरथजी ने धर्म पूर्वक राज्य करते हुये अपनी आयु का तीन भाग बिता दिया । तब तक पुत्ररत्न प्राप्त न होने के कारण । चौ०-एक बार भूपति मन माही । भइ ग्लानि मोरे सुत नाहीं ॥ मैं वृद्ध हो गया अभी तक मेरे सन्तान न हुई इस महादुःख से दुखी होकर गुरुदेव श्रीवशिष्ठजी के यहाँ गये । गुरुदेव की चरण-वन्दना करके अपने हृदय की व्यथा व्यक्त की । तब श्रीवशिष्ठ जी ने कहा कि--चौ०-धरहु धीर होइहैं सुतचारी । त्रिभुवन विदित भगत भयहारी ॥ सृङ्गी ऋषिहिं वशिष्ठ बुलावा । पुत्र काम शुभ यज्ञ करावा ॥ वार्ता—प्रेम भाव पूर्वक भक्ति सहित श्री सृङ्गी ऋषि ने सविधि यज्ञ सम्पादन करवाया । यज्ञान्त में पूर्णाहुति के पश्चात् श्रीअग्निदेव जी हाथ में चरू (खीर) से युक्त थाल लिये प्रगट हुये, और कहा कि--चौ०- जो वशिष्ठ कछु हृदय विचारा । सकल काम भा सिद्ध तुम्हारा ॥ यह हवि बाँटि देहु नृप जाई । जथा जोग जेहि भाग बनाई ॥ वार्ता--सम्पूर्ण सभा को ऐसा समझाकर अग्निदेव अदृश्य हो गये । उस दिव्य चरू को पाकर अग्निदेव की वाणी सुनकर महाराज श्रीदशरथजी परमानन्द में मगन हो गये, हृदय में इतना हर्ष उत्पन्न होगया कि जो अन्दर समाता नहीं है । रोमांच पुलकावली इत्यादि के द्वारा बाहर प्रगट होता है । श्रीदशरथजी महाराज ने अपनी प्रिय रानियों को बुलाकर अग्निदेव के द्वारा प्राप्त वह दिव्य चरू का विभाजन किया । सम्पूर्ण चरू का आधा भाग माता श्री कौशल्याजी को दे दिया । आधे में से दो भाग करके एक भाग श्रीकैकेईजी को दे दिया । शेष चरू के पुनः दो भाग किये, इस प्रकार सभी महा-

रानियों को गर्भाधान हुआ। वह अपने हृदय में बहुत हर्षित हुईं। जिस दिन से भगवान् श्रीहरि अंशों समेत माताओं के गर्भ में प्रगट हुये, उसी दिन से समस्त विश्व सुख और सम्पति से परिपूर्ण हो गया। परम शोभा, शील एवं तेज की खानि महारानियाँ राज-मन्दिरों (भवनों) में शोभायमान हो रही हैं। इस प्रकार कुछ समय बीत गया, प्रभु के प्रगट होने का समय निकट आ गया। उस परम पावन अवसर पर—

दोहा—जोग, लगन, ग्रह, बार, तिथि, सकल भये अनुकूल।
चर अरु अचर हर्ष युत, रामजनम सुखमूल ॥१८७॥

वार्ता—चैत्र शुक्ल नौमी तिथि और प्रभु प्रीति प्रदायिनी अभिजित मुहूर्त में दिन के मध्य (दोपहर) में उस समय न तो अधिक शीत (ठण्डी) थी न अत्यन्त तीक्ष्ण घाम (धूप) ही था। समस्त लोकों को परम विश्राम देने वाले उस परम पवित्र समय में शीतल मन्द सुगन्धित वायु चल रही थी। देवता प्रसन्न थे, संतों के हृदय में उत्साह बढ़ रहा था। सभी बन बाग एवं वाटिकाओं के वृक्ष एक साथ खिल उठे। अपनी सम्पत्ति फूल और फलों से सम्पन्न हो गये। पर्वतों में अनेक प्रकार की दिव्य मणि प्रगट हो गईं। और सभी नदियों में अमृत के समान शीतल मधुर प्रिय जल बहने लगा। उस परम दिव्य अवसर पर श्री ब्रह्माजी समस्त देवताओं के साथ विमान सजाकर श्रीअवध के ऊपर आकाश मण्डल में आ गये। उस समय देवताओं के विमानों से आकाश में भी भीड़ हो गई। अनेकानेक गन्धर्व प्रभु के मंगलमय गुणों का गान कर रहे थे। देवता लोग विमान पर बैठकर—

चौ०—बरषहिं सुमन सुअंजलि साजी। गहगहि गगन दुन्दभी बाजी॥
अस्तुति करहिं नाग मुनि देवा। बहुविधि लावहिं निज निज सेवा॥

वार्ता—इस प्रकार प्रार्थना करके सभी देवता अपने अपने लोक को चले गये, तब सकल जगत् में व्यापक रूप से निवास करने वाले, एवं समस्त लोकों को परम विश्राम देने वाले प्रभु प्रगट हुये :—

छंद—प्रगटे सुषमाकर परम प्रभाकर भक्त जनन हितकारी। मृदु मंजुल मूरति अति प्रिय सूरति करुणानिधि धनुधारी॥ मातहिं सुखदायक प्रभु सब लायक कृपासिन्धु सुखरूपम्। सुठि वेष मम्हारे अतिमनहारे अद्भुत मधुर अनूपम्॥ नयनन सुखकारी हिय रुचिकारी श्यामबरण छबिसारम्। विलसति बनमाला नयनरसाला चितवनि परमउदारम्॥ मुखचन्द्र सोहावन अति मनभावन कोटिन शशि द्युतिहारी। दोउभुजा विशाला अति छवि जाला सुन्दर भूषणधारी॥ आयतउर सोहत लखि मनमोहत पदिकहार छविछाये। मणिमुक्तनमाला सुखद रसाला चितवत चितहिंचुराये॥ लखि सुभग स्वरूपं अकथ अनूपं माता बैन

उचारी । जय प्रभु जगकारण अधम उधारण कृपामूर्ति दुखहारी ॥ जय जगत प्रकाशक खलदल नाशक दीनानाथ दयाला । भक्तन परतन्त्रा परम स्वतन्त्रा अघहर परमकृपाला ॥ जय करुणासागर शुभगुण आगर गुणातीत भगवन्ता । माया जेहि दासी अज अविनासी अगम अनादि अनन्ता ॥ सो मम हित कारण नरतन धारण कियो सप्रेम सुखारी । निजरूप दिखायो मोद बढ़ायो आपनिमातु विचारी ॥ मम उदरनिवासी सुनि उपहासी करि हैं नर अरु नारी । यह ज्ञान प्रकाशत प्रभु मुसुकावत निजलीला विस्तारी ॥ कहि सुखद कहानी सुतप बखानी पुत्रहीन वर माँगा । रुचि रखन तुम्हारी हे महतारी आयों भरि अनुरागा ॥ मोहिं प्यार करीजै अति सुख लीजै आपन बालक जानी । सुनि प्रभुकी बानी शुचि सुखखानी बोलीं माँ सुख मानी हे राजिवनयना प्रभु सुखअयना प्रिय शिशु रूप बनाओं । तब मैं दुलरावौं मोद समावौं अस अभिलाष पुजाओ ॥ माँ की प्रियबानी सुठि रस सानी सुनि प्रभु हिय हर्षाये । अतिसय मनहारी प्रिय रुचिकारी लघु शिशु रूप बनाये ॥ प्रभु जनम चरित्रा परम पवित्रा जो सज्जन हिय ध्यावैं । संतत जो गावैं हरिपुर जावैं परमानन्द समावैं ॥

दो०—यहि विधि परमानन्दघन, सतचित परम उदार ।
भक्त सुखद प्रभु प्रगट भय, सीताशरण अधार ॥

चौ०—सुनि शिशु रुदन परम प्रिय बानी । संभ्रम चलि आईं सब रानी ॥
हर्षित जहँ तहँ धाईं दासी । आनँद मगन सकल पुर बासी ॥

वार्ता—वह रात्रि मानो सूर्य को देखकर सकुचा गई हो तथापि सन्ध्या का अनुमान होने लगा । अगर और धूप इतनी अधिक मात्रा में जल रहे हैं कि मानों अँधेरा सा हो गया है । उस अगर और धूप इतनी अधिक मात्रा में जल रहे हैं कि मानों अँधेरा सा होगया है । उस अगर और धूप के धुआँ में अबीर उड़ाया जाता है, वह मानों सायंकाल की लालिमा है ।

चौ०:—मन्दिर मनि समूह जनु तारा । नृप गृह कलश सो इन्दु उदारा ॥
भवन वेद ध्वनि अति मृदुबानी । जनु खग मुखर समय जनुसानी ॥

वार्ता—उस महामहोत्सव के परमानन्दमय कौतुक को देखकर भगवान् भास्कर एक महीना तक भ्रमण कार्य भूल श्रीअवध का आनन्द देखते रहे । श्रीरामावतार का दिन लोक की गणनानुसार एक महीना का हुआ, किन्तु इस रहस्य को सर्व साधारण कोई भी व्यक्ति जान नहीं सका । कारण यह था कि रथ सहित सूर्य भगवान् स्तब्ध हो गये तब रात्रि कैसे हो ।

चौ०:---यह रहस्य काहू नहिं जाना। दिनमनि चले करत गुण गाना॥
देखि महोत्सव सुरमुनि नागा। चले भवन वर्णत निज भागा॥

श्रीशंकरजी श्रीपार्वतीजी से कहते हैं कि हे गिरजे! तुम दृढ़ बुद्धि वाली हो, इसलिये मैं अपनी भी एक चोरी तुमसे कहता हूँ। वह यह कि--श्रीकागभुसुण्डिजी के साथ हम भी मानव रूप बनाकर परमानन्द प्रेम और प्रभु दर्शन के परम सुख की लालसा में फूले हुये, श्रीअवध की गलियों में मगन होकर इधर उधर विचरण कर रहे थे। नगर निवासी प्रेम में भरे हुये श्रीराम जन्म की बधाई गा रहे थे। महाराजाधिराज श्रीचक्रवर्तिजी सभी को मनमाना दानदेकर प्रसन्न कर रहे थे।

चौ०:----गज रथ तुरग हेम गो हीरा। दीने नृप नाना विधि चीरा।
दो०:---मन संतोषे सबनि के, जहँ तहँ देहिं असीश।
सकल तनय चिर जीवहु तुलसी के ईश॥

इस प्रकार उत्सव का परमानन्द श्री अवध भर में ही नहीं लोक-लोकान्तरों में भर रहा था। महल में प्रवेश करके श्रीअवध निवासिनी मातायें बधाई गाती हैं उसे ध्यान देकर सुनो :—

❀ श्रीरामजन्म बधाई उत्सव मंगल पद ❀

सब मिलि आओ री सजनी, मंगल गाइये॥ रानी कौशिल्या के भये सुत वेगि बधावो जाइये। आज कैसो दिवस सजनी, बड़े भागन पाइये॥ घसि चारुचन्दन लीपि आँगन मोतिन चौक पुराइये। सात सींकं सँवारि सथियाँ बन्दनवार बँधाइये॥ लालन मुख लखि लेउँ बलैयाँ, नैनन हियोसिराइये। प्राण सर्वसवारने करि, फूली अंगन माइये॥ हिय हुती सो दृगनदेखी भयो सबनि मनभाइये। 'हित' अनूप हमार जीवन विधना तू चिरजाइये॥ १॥ वार्ता--सखी की इस प्रकार बात सुनकर दूसरी सखी कहती है कि--हे सखी सुनो तो सही

आज महामंगल कोशलपुर, सुनि नृप के सुतचारि भये। सदनसदन सोहिलो सोहावनो, नभ अरु नगर निशान हये॥ सजि सजि जान अमर किन्नर मुनि, जानि समय सम गानठये। नाचहिं नभ अपसरा मुदित मन, पुनि पुनि बरषहिं सुमनचये॥ अति सुख वेगिबोलि गुरु भूसुर, भूपति भीतर भवन गये। जातकरम करि कनक बसन मनि, भूषितसुरभि समूह दये॥ दल फल फूल दूब दधि रोचन, जुवतिन भरिभरि थार लये। गावत चलीं भीर भइ वीथन, वन्दिन बाँकुरे विरद वये॥ कनककलश चामर पताक ध्वज, जहँ तहँ बन्दनवार नये। भरहिं अँबीर अरगजाछिरकहिं, सकल लोक इकरंग रये॥ उमगि चल्यो आनन्द लोकतिहुँ, देत सबनि मन्दिररितये। तुलसिदास पुनि भरेहिं देखियत, रामकृपा चितवनि चितये॥ २॥ वार्ता--तब तीसरी सखी कहती है कि –हे सखी! ध्यान

देकर सुनिये-- बाजत आज आनन्द बधाई ॥ कौशिल्या के राम जनमलिये, देखहु नयन-अघाई । सब नरनारि सुमंगलगावहिं नाचहिं तालबजाई ॥ कूदहिं करहिं कलोल परस्पर, अतर अँबीर उड़ाई । लालभयो सरयूजल शोभित, गलियन कीच-मचाई ॥ बरषहिं सुमन बजावहिं नाचहिं, देव विमान विहाई । अवधपुरी में मंगल घरघर, लखि ब्रह्मादि सिहाई ॥ अवधपुरी सब लोक एक भयो, मंगल तिहुँपुर छाई । कोटिकाम छवि लखि दशरथसुत "(श्री) रामचरण" बलि जाई ॥ ३ ॥ वार्ता--उन सखियों की प्रेम भरी बात सुनकर चौथी सखी कहती है कि--

महराजा अवधेश के सुनु सोहिलरा । बजत बधाई आज मेरा मन मोहिलरा॥ जनमें पुत्र सुपुत्र हैं सुनु॰ । अचल भयो कुलराज मेरा॰ ॥ नृपत दान बहुतेक दिए ॥सुनु॰ गउवें अरु गजबाजि मेरा॰ ॥ धरति सुवासिनि साथियाँ सुनु॰ । गावतिमंगलचार मेरा॰ ॥ (श्री 'कृपानिवास" को दीजिये सुनु॰ । महरानी गरे को हार मेरा॰ ॥ वार्ता—तब पाँचवीं सखी कहती है कि— हे सखी ध्यान से सुनो अवध भर में सोहिलो सुनाई दे रहा है । सहेली सुनु सोहिलो रे ॥ सोहिलो, सोहिलो सोहिल सब जग आज । पूत सपूत कौशिला जायो, अचल भयो कुल-राज ॥ १ ॥ चैत चारू नौमीतिथि सितपख, मध्यगगन-गत भानु । नखत जोग ग्रह लगन भले दिन, मंगल मोद निधान ॥ २ ॥ व्योम, पवन, पावक जल, थल, दिशिदशहु सुमंगलमूल । सुर दुन्दुभी बजावहिं गावहिं, हरषहिं वरषहिं फूल ॥ ३ ॥ भूपति भवन सोहिलो सुनि, बाजैं गहगहे निशान । जहँ तहँ सजैं कलश धुज चामर, तोरन केतु वितान ॥ ४ ॥ सींचि सुगन्ध रचैं चौके गृह आँगन गली बजार । दल फल फूल दूब दधि रोचन, घरघर मंगलचार ॥ ५ ॥ सुनि सानन्द उठे दशस्यंदन सकल समाज समेत ॥ ६ ॥ लिये बोलि गुरु सचिव भूमि सुर, दिये महिदेवन दान । तेहि अवसर सुत तीनि प्रगट भय, मंगल मुद कल्यान ॥ ७ ॥ आनन्द महँ आनन्द अवध, आनन्द बधावन होइ । उपमा कहौं चारि फल की, मोहिं भल न कहै कवि कोइ ॥ ८ ॥ सजि आरती विचित्र थार कर, जूथ जूथ वर नारि । गावत चलीं बधावन लै लै निज निज कुल अनुहारि ॥ ९ ॥ असही दुसही मरहु मनहि मन, बैरिन बढ़हु विषाद । नृप सुत चारि चारु चिर जीवहु, शंकर गौरि प्रसाद ॥ १० ॥ लै लै ढोव प्रजा प्रमुदित चले, भाँति भाँति भरि भार । करहिं गान करिआन रायकी, नाचहिं राजदुआर ॥ ११ ॥ गज रथ बाजि बाहिनी बाहन, सबनि सँवारे साज । जनु रतिपति ऋतुपति कोशलपुर, विहरत सहित समाज ॥ १२ ॥ घंटा घंटि पखाउज आउज, झाँझ बेनु डफतार । नूपुर धुनि मंजीर मनोहर करकंकण झनकार ॥ १३ ॥ नृत्य करहिं नटनटी नारि नर अपने अपने रंग । मनहुँ मदनरति विविध वेषधरि, नटन सुदेश सुढंग ॥ १४ ॥ उघटहिं छन्द प्रबन्ध गीत पद, राग-तान बन्धान । सुनि किन्नर गन्धर्व सराहत, बिथके हैं विबुध विमान ॥ १५ ॥ कुंकुम अगर अगरजा छिरकहिं, भरहिं गुलाल अबीर । नभ प्रसूनझरि,

पुरी कोलाहल, भइ मनभावति भीर ॥ १६ ॥ बड़ी बयस बिधि भयो दाहिनो, सुर गुरु आशिरवाद। दशरथ सुकृत सुधासागर सब, उमगे हैं तजि मरजाद ॥ १७ ॥ ब्राह्मण वेद बन्दि विरदावलि, जयधुनि मंगल गान। निकसत पैठत लोग परस्पर बोलत लगि लगिकान ॥ १८ ॥ वारहिं मुक्ता रत्न रायमहिषी, पुरसुमुखि समान। बगरे नगर निछावरि मनिगन, जनु जुवारि जव धान ॥ १६ ॥ कौन वेदविधि लोकरीति नृप मन्दिर परम हुलास। कौशल्या कैकई सुमित्रा, रहस विवश रनिवास ॥ २० ॥ रानिन दिये बसन मनि भूषन, राजा सहन भँडार। मागध-सूत-भाट-नट-याचक, जँह तहँ करहिं कवार ॥ विप्र बधू सनमानि सुआसिनि, जन पुरजन पहिराइ। सनमाने अवनीश अशीषत, ईश रमेश मनाइ ॥ २२ ॥ अष्टसिद्धि नवनिद्धि भूतिसब, भूपतिभवन कमाहिं। समउ समाज राज दशरथ को लोकप सकल सिहाहिं ॥ २३ ॥ को कहि सकै अवध बासिन को, प्रेम प्रमोद उछाह। शारद शेष गनेश गिरीशहिं, अगम निगम अवगाह ॥ २४ ॥ शिव बिरंचि मुनि सिद्ध प्रसंशत, बड़े भूप के भाग। तुलसिदास प्रभु सोहिलो गावत, उमगि उमगि अनुराग। सहेलो सुनु सोहिलो रे ॥ २५ ॥ ५ ॥

आज सुदिन शुभघरी सोहाई। काह कहौं अधिकाई ॥ रूप शील गुन धाम राम नृप, भवन प्रगट भय आई ॥ अति पुनीत मधुमास लगन ग्रह, बार जोग समुदाई। हरषवन्त चर अचर भूमिसुर, तनरुह पुलक जनाई ॥ बरषहिं बिबुध निकर कुसुमावलि, नभ दुन्दुभी वजाई। कौशल्यादि मातु मन हरषित, यह सुख बरनि न जाई ॥ सुनि दशरथ सुत जनम लिये सब, गुरुजन विप्र बोलहि। वेद विदित करिक्रिया परमशुचि, आनन्द उर न समाई ॥ सदन वेद धुनि करत मधुर मुनि, बहुविधि बाज बधाई। पुर बासिन प्रिय नाथ हेत निज, निज सम्पदा लुटाई ॥ मनि तोरन बहुकेतु पताकनि, पुरी रुचिर करि छाई। मागध सूत द्वार वन्दीजन जहँ तहँ करत बड़ाई ॥ सहज सिंगार किये वनिता चलीं, मंगल बिपुल बनाई। गावहिं देहिं अशीश मुदित; चिरजिवौ तनय सुखदाई ॥ वीथिन कुंकुम कीच अरगजा, अगर अँबीर उड़ाई। नाचहिं पुर नरनारि प्रेमभरि, देह दशा विसराई ॥ अमित धेनु गज तुरग वसन मनि, जात रूप अधिकाई। देत भूप अनुरूप जाहि जोइ, सकल सिद्धि गृह आई ॥ सुखी भये सुर सन्त भूमिसुर, खलगन मन मलिनाई। सवैसुमन विकशत रवि निकसत, कुमुद बिपिन बिलखाई ॥ जो सुख सिन्धु सुकृत सीकर ते, शिव बिरंचि प्रभुताई। सोइ सुख अवध उमगि रह्यो दश दिशि, कौन जतन कहौं गाई ॥ जे रघुबर चरणचिंतक, तिनकी गति प्रगट दिखाई। अविरल अमल अनूप भगति दृढ़, तुलसिदास तब पाई ॥ ५ ॥

अवध आज आगमी एक आयो। करतल निरखि कहत सब गुन गन, बहुतन परिचौ पायो। बूढ़ो बड़ो प्रमानिक ब्राह्मण, शंकर नाम सोहायो। संग शिशु शिष्य सुनत कौशल्या, भीतर भवन बुलायो ॥ पायँ पखारि पूजि दियो आसन, असन बसन

पहिरायो। मेले चरण चारु चार्योसुत, माथे हाथ दिवायो ॥ नख सिख बालविलोकि बिप्रतन पुलक नयन जल छायो। लै लै गोद कमलकर निरखत, उर प्रमोद न अमायो॥ जनम प्रसंग कह्यो कौशिक मिस, सीय स्वयंबर गायो। राम भरत रिपु दवन लखन को, जय सुख सुजस सुनायो॥ "तुलसिदास" रनिवास रहसवश, भयो सबको मन भायो। सनमान्यौ महिदेव अशीसत, सानन्द सदन सिधायो॥६॥ कौशल्या के सुवन भयो सखि, देखन को उठि धाई री। मानिक थार भरे मंगल सब, यूथ यूथ सखि आई री॥ आरति करि पुनि करहिं निछावरि, आनन्द उर न समाई री। विविध भाँति पुर बजति बधाई, जहँ तहँ मंगल गाई री। दशरथ द्वार राग रागिनि किधौं, ढाढ़िनि रूप सोहाई री। बेद कर्म सब कीन भूपमनि, जेहि विधि गुरुन बताई री॥ बन्दी सुत मागध गायक बहु, जय जय बचन सुनाई री। किधौं वेद विधि शिव किन्नर सुर, याचक वेष बनाई री॥ दान देत दशरथ वशिष्ठ मिलि, गज रथ मनि समुदाई री। तुरंग भूमि पट आदि दिये सब, जेहि जेहि जो मन भाई री॥ बरषत सुमन देव ब्रह्मादिक, नभ दुन्दुभी बजाई री। जय दशरथ जय जय कौशिल्या, आदि ब्रह्म सुत पाई री॥ कौशल्यादि सकल रनिवासू, याचक लीन बोलाई री। सर्वस दान दीन सब काहुँहिं, तिन सब हरषि लुटाई री॥ कुम्भ कनक कदली वितान रचि, घरघर मंगल छाई री। इत उत अँगिर अगर कुमकुम दै, गलियन कींच मचाई री॥ कहि न सकैं श्रुति शेष शारदा, दशरथ नगर निकाई री। निज निज पुर सुधि भूलि हरष विधि, हरि हर मन ललचाई री॥ असुरन के घर भयो अमंगल सुरमुनि मंगलदाई री। "रामचरण" जय जय दशरथ सुत, जय कौशिल्या माई री॥ ७॥

सजनी आज भयो मन भायो॥ भाग कि भाजन रानि कौशिला, सुघर सलोनो सुत जायो। हमहुँ भई अब भाग कि भाजन, दैहौं जाइ बधायो॥ चलिये वेगि बिलम्ब न कीजै, अब नहिं परत रहायो। देखिय मंगलमय मुख सुत को, उर उछाह अधिकायो॥ करि आरति तनमन धन वारिय, जानिय लेखे पायो। यूथ यूथ मिलि चलीं सुनारिन, कर में मंगलथार सोहायो॥ बहुत दिनन ते मनावत विधि को, आज दाहिने आयो। पूजे देव गणेश भवानी, आज सोई फल पायो॥ कोउ सजत कोउ जात चली मग, परत उतायल पायो। कोउ नृप मन्दिर पहुँचि सुभामिनि, निरखि राम सुख छायो॥ पुरबासी परिजन सेवकजन, भय सबको चितचायो। 'रसिकअली" नाते सुख सबको, पुरुष तिया श्रुति गायो॥ ८॥ गावो सुभग सोहिलो, नृप महिषी सुत जायो री। वीती वय सुर सुकृत मनावन, आज सोई दिन आयो री॥ गयो सोच सबके उरते अब, जनम लाभ सोइ पायो री। कहौं कहा यह लाभ को लेखो, रंक सदन धन छायो री॥ जन्म हीन दृग कहँ लोचन सुख, निरखि मोक्ष पद गायो री। रोगी महा जनम को जैसे, रुजगत अंग सोहायो री॥ तिनते कोटि गुणों सुख तिन कहँ, जो यह लेखो लगायो री। मेरी कहा

चलो री सजनी,अंकन विधि बनायो री ॥ दहशत सहस सहसदश लक्षणि, गुणिन न कोक समायो री । सुर मुनि नाग ईश विधिको चित, या सुखको ललचायो री ॥ जेहि सुख लागि विविधि जप तप मख, करत मुनी कोउ पायो री । "रसिकअली" पुरजन परिजन बिन, और कौन को दायो री ॥ ६ ॥ पद रेखता १० ॥ चलो सखि हरषतावल में । भये सुत राज रावल में ॥ मगन रस हँसत खेलो री । गावोंगी राम सुहेलों री ॥ सजो री साज स्वाँगन में । नचौंगी राय आँगन में ॥ करोंगी प्रेम की सैलें । उघारें आज मन फैलें ॥ परैं सुख सिन्धु में गहरें । उठें जहँ रंग की लहरें ॥ खड़े अनुराग झूलें री । खुशी के बाग फूलें री ॥ लखो री प्राण पालन को । खिलाओ गोद लालन को ॥ "कृपानिवास" के प्यारे । अवधपुर राय के बारे ॥ १० ॥ सुनो री नौबतें बाजैं । मानो सावन के घन गाजैं ॥ नचैं पुर सुघर कामिनि सी । दमक तन चपल दामिनि सी ॥ बनी छबि धूप धूमन की । मनो घटा श्यामलूटन की ॥ बरषि सुर सुमन मन मोहैं । सुभग बगमाल सी सोहैं ॥ खुशी के बरस पानी री । हरे जहँ राग रानी री ॥ भरे मन रसिक सागर से । उपासक राम नागर से । बढ़ी अब प्रीति की नदियाँ । उखर बहि कूल फुलवगियाँ ॥ "कृपानिवास" मन मछियाँ । अवधपुर सदियाँ अछियाँ ॥ ११ ॥

बधाई अवधेश के बाजैं । मनोघन गह गहे गाजैं । गुनी गन्धर्व जुरि आये । दान मनभावते पाये ॥ मलिनियाँ माल गुहि लाई । नाइनी हरी दूब बँधवाई ॥ सुवासिनि सोहिलो गावैं । लला के वारने जावैं ॥ सखी सथियाँ सँवारे री । विरद बन्दी उचारें री ॥ पढ़त द्विज वेद बरबानी । धन्य महराज महरानी ॥ यही छवि देखि सब हरषैं । सुमन बहु व्योम ते बरषैं ॥ असीसैं देत नर नारी । "रसिकगोविन्द" बलिहारी ॥१२॥ महल में सोहिलो गावैं । सखी सब मोद उपजावैं । ललन की बाल छवि निरखैं । सुघन पटवारि मन हरषैं । सराहैं भाग दम्पति को । जो पाई ऐसी सम्पति को ॥ दुआरें नौबतें बाजैं । नगर में छाई आवाजैं ॥ ग्राम की नारि सुनि धाईं रावले माझ जुरि आईं बढ़ेउ सुख सिन्धु चहुँ ओरी । 'प्रेम रस मोद" को बोरी ॥ १३ ॥ लाल की छवि देखन चलो माई । उमगत हिय आनन्द अनूपम, कौशिल्या सुत जाई ॥ गजमनि चौक रची पुरवनिता, मंगल कलश धराई ॥ बन्दनवार द्वार प्रति बाँधत, ध्वज पताक छबि लाई ॥ गलियन कीच अरगजा माची, धूप धूम नभ छाई । "रसिकअली" नाचत सुर बनिता, कुसुममाल बरषाई ॥ १४ ॥ सुभग सेज शोभित कौशिल्या, रुचिर राम शिशु गोद लिये । बार बार बिधु बदन बिलोकति लोचन चारु चकोर किये ॥ कबहुँ पौढ़ि पय पान करावति, कबहुँक राखति लाय हिये । बालकेलि गावति हलरावति, पुलकित प्रेम पियूष पिये ॥ विधि महेश मुनि सुर सिहात सब, देखत अम्बुद ओट दिये । "तुलसिदास" ऐसो सुख रघुपति पै काहू पायो न बिये ॥ १५ ॥ या शिशु के गुन नाम बड़ाई । को कहि सकै सुनहु नरपति, श्रीपति समान प्रभुताई ॥ यद्यपि बुधि वय रूप शील गुन, समै चारु

चारो भाई। तदपि लोक लोचन चकोर शशि, राम भगत सुखदाई ॥ सुर नर मुनि करि अभय दनुज हति, हरहिं धरनि गरुआई। कीरति विमल विश्व अघमोचनि, रहिहि सकल जग छाई ॥ याके चरण सरोज कपट तजि, जे भजिहैं मन लाई। ते कुल उभय सहित भव तरिहैं, यह न कछू अधिकाई ॥ सुनि गुरु वचन पुलकतन दम्पति, हरष न हृदय समाई। "तुलसिदास" अवलोकि मातु मुख, प्रभु मन में मुसुकाई ॥ १६ ॥

मंगलमय प्रभु जनम समय में अति उत्तम दश योग परे। अपने अपने नाम सदृश फल, दशौ जनावत खरे खरे ॥ ऋतुपति ऋतु पुनि आदि मासमधु, शुक्ल पक्ष निब धर्म भरे। अंक अवधि नौमी शशि वासर, नखत पुनर्वसु प्रकृति चरे ॥ योग सुकर्म समय मध्यम दिन, रविप्रताप जहँ अति पसरे। जय दाता अभिजित मुहूर्तवर,परमउच्च ग्रह पाँच ढरे ॥ नौमि पुनर्वसु परम उच्च रवि, कवहुँ न तीमिउ छांग अरे। यहि ते "देव" रूप कछु लखिये, गाय गाय गुण गाय तरे ॥ १७ ॥ पगनि कव चलिहो चारौ भैया। प्रेम पुलकि उरलाय सुवन सब कहति सुमित्रा मैया ॥ सुन्दर तन शिशु वसन विभूषन नखसिख निरखि निकैया। दलितृन प्राननिछावरि करि करि लैहैं मातु वलैया ॥ किनकनि नटनि चलनि चितवनि भजि मिलनि मनोहर तैया ॥ मनिखम्भनि प्रतिबिम्ब झलक छवि छलकिहैं भरि अँगनैया ॥ वाल विनोद मोदमंजुल विधु लीला ललित जुन्हैया। भूपति पुन्य पयोधि उमगि घर घर आनन्द बधैया ॥ ह्वै हैं सकल सुकृत सुखभाजन लोचन लाहु लुटैया। अनायास पाइहैं जनमफल तोतरे बचन सुनैया ॥ भरत राम रिपुदवन लखन के चरित सरित अन्हवैया। "तुलसी" तब कैसे अजहुँ जानिवे रघुवर नगरवसैया ॥१८॥ ललन लोने लेरुआ बलि मैया। सुख सोइये नीद वेरिया भइ चारु चरित चारयो भैया ॥ कहति मल्हाइ लाइ उर छिन छिन छगन छबीले छैया। मोदकन्द कुलकुमुदचन्द्र मेरे रामचन्द्र रघुरैया। रघुवर बालकेलि छोटे सन्तन की सुभगसुभद सुरगैया। "तुलसी" दुहि पीवत सुखजीवत पय सप्रेम घनोघैया ॥१९॥

छोटी छोटी गोड़ियाँ अँगुरियाँ छबीली छोटी, नख ज्योति मोती मानो कमल दलनि पर। ललित आँखन खेलैं ठुमुकि ठुमुकि खेलैं, झुंझुनु झुंझुनु पायँ पैजनी मृदु-मुखर ॥ किंकिनो कलित कटि हाटक जटित मनि, मंजु करकंजनि पहुँचिया रुचिरतर। पियरी झीनी झँगुली साँवरे शरीर खुली, वालक दामिनि ओढ़े मानो वारे वारिधर ॥ उर बगनहा कन्ठ कठुला मँडूले केश, मेढ़ीलटकनि मसिविन्दु मुनि मनहर। अंजन रंजित नैन चितचोरै चितवनि, मुखशोभा पै वारौं अमित असमर। चुटकी बजावती नचावती कौशल्या माता, बालकेलि गावती मल्हावती सुप्रेमभर। किलकि किलकि हँसैं द्वै द्वै दतुरियाँ लसैं, तुलसीके हियवसैं तोतरे बचनवर ॥२०॥ कौशल्यारानी तुमसम कौनसपूती। करी कमाई मनकी भाई नेक न माया धूती ॥ गोपुर स्वामी गोद खिलावै भक्ति लगाई दूती "कृपानिवासी" मधुरे बैना गावत मैना तूती ॥२१॥ चलायो रानी परमेश्वर पर टोना ॥ बेदन गायो पार न पायो जायो श्याम सलोना। योगी योग साधना हेरैं तेरे खेल खेलौना॥

भयो नहीं न होइहैं कबहूँ बिना प्रेम कहाँ होना। "कृपानिवास" सनेहिन के वश कौशिल्या जू के छौना ॥२२॥ लाल की छबिदेखन चलो माई। उमगत हिय आनन्द अनूपम कौशल्या सुत जाई॥ गजमनि चौक रचो पुर बनितन मंगल कलश धराई। बन्दनवार द्वार प्रति बाँधत ध्वज पताक छबि लाई॥ गलियन कीच अरगजे माची धूप धूम नभ छाई 'रसिक-अली" न चत सुर बनिता कुसुममाल बरषाई ॥२३॥ रघुबंर की बधाई गावो, प्रियपावः सरसावो मोरे रामा हो। सुनि के सोहिलो सोहन, छोहन छजवावो मोरे रामा हो। तन मन निछावर करिके, द्गरस बरसावो मोरे रामा हो॥ भूपति मनि सुवन सलोनो, छबि हेरि हिरावो मोरे रामा हो॥ "युगलअनन्य" छनहिं छन, सुख सिन्धु समावो मेरे रामा हो ॥२४॥ लैहौं नेग मैं कर को कँगनवाँ॥ महारानी बिनती सुनु मोरी, सुखी रहैं तेरे चारों ललनवाँ। रामलला की निछावर लैहौं, और नहीं कछु मोर चहनवाँ॥ गाय बजाय रिझाय मजे से, ढाढ़िनि मचली भूप अँगनवाँ। "मधुरअली" हँसि देत निछावर, राम मातु मन मोद मगनवाँ ॥२५॥

चलो री सखि देखि आवैं प्यारे रघुरैया॥ घर घर बन्दनवार पताका, बरणि न जाय निकैया। पुर नर नारि मगन होय गावैं. घर घर बजति बधैया॥ राम लक्ष्मण भरत शत्रुहन, सुन्दर चारों भैया। कौशिल्या कैकयी सुमित्रा, पुनि पुनि लेत बलैया॥ सुर नर मुनि जय जयकार कर हैं, बरषत सुमन निकैया। श्रीदशरथ जू के आँगन में नाचें "मस्त" गवैया ॥२६॥ न लैहौं महरानीजू करकँगना॥ बहुत दिननकी आश लगी है, सो दिन पहुँचो आनी जू। रामलला की निछावर लैहौं जो हमरे मन मानी जू। गले को हार कौशल्या रानी दीनों तब ढाढ़िनि मुसुकानी जू। "रामदास" की आश यही है,महल टहल मन मानी जू ॥२७॥सदा शुभहोवै जनमकी घरी॥ माई कौशिल्या की कोख सिरानी; गोद खिलावैं मोदभरी। राजा लुटावैं अन धन सोनवाँ, रानी लुटावैं मोतियन की लरी॥ द्वार द्वार प्रति नौबत बाजै, मालिनियाँ लिये माल खड़ी। सुर नर मुनि जय जयकार करत हैं "मस्त" करत फुलवनकी झड़ी॥२८॥ बधाई बाजि रही घनघोर। दशस्य न्दन के चार सुवन भय, दुइ श्यामल दुइ गोर॥ महल महल प्रति नौबत बाजै, मच्यो आनन्द को शोर। चन्द्रमुखी मृगनयनी गावैं, जस कोकिल बन मोर॥ पुरवासिन की दशा बिसर गइ, जानत नहिं निशि भोर। "सियाअली" यह कौतुक देखत, बीती रजनी जागने में ॥२६॥

सखी री श्रीमहलन के बीच बरसि रही प्रेम घटा घनघोर॥ हिलमिल हरषि हरषि हिय हेली, नाचैं नइ नइ नाच नवेली। चारहुँ ओर चलीं द्ग खंजनि धरि अंजन की कोर॥ रानिन मोतियन चौक पुराये, पूजन कलश सखिन धरवाये। मंगल गावहिं सगुन मनावहिं गहि अंचल की छोर॥ सुरगन बैठि बिमान पधारे, बरसत सुमन बजाय नगारे। राम जनम उत्सव को आली, भयो त्रिभुवन में शोर॥ धन्य अवध के नर अरु

नारी, महल टहल के जे अधिकारी । चोर जोर दृग जोर "बिहारी" प्रभु चरणन की ओर ॥ ३० ॥ सब मोद मनावैं मन में, राजनगृह लालन जनमे । अनमोल बसन बिछि भूमि रहे, हीरन के तोरन भूमि रहे, मलसाउ जरे कलशन में ॥ नरनारी आवत जावत हैं, मणि माणिक लाल लुटावत हैं, सब धनपति ह्वै रहे धन में ॥ फूलन की मग मग महक मचौ, ऋतुपति ने रचना रुचिर रची, बागन बागन बन बन में ॥ दइ आज्ञा अवधविहारी ने, पायो अधिकार बिहारी ने, मन लागि रह्यो चरणन में ॥ रा०गृ० ३१ ॥ रघुकुलमणि श्रीराम चढ़े कौशिल्या कइयाँ । पीत भँगुलिया अंग फिरत कबहूँ घुटरइयाँ ॥ रतन जड़ित चूड़ा सोहैं कटि करधनियाँ । पग नूपुर अनमोल बजैं रुन् झुन झनकइयाँ ॥ कच घुँघुरारे शीश चौतनी अनूप रूप । बघनखहा शुभ चन्द चारु ग्रीवा बिच महियाँ । चारो भाई खेलैं खेल आँगना में दौर दौर । धावत जननी ओर डरत लखि निज परिछहियाँ ॥ होत मन मोद मातु देखि देखि श्यामगात । दर्शन देत रमेश लेत मन जी ललकइयाँ ॥३२॥

चन्दा माँगैं रामलला । ठुमकि ठुमकि माता ढिग जावैं, छिन छिन खीझैं और खिझावैं । करि करि केलि कला ॥ कौशिल्या के बारी बारी, खीचैं सारी कबहुँ किनारी । कबहुँ तानि अचला ॥ को जानै कैसे ललचावैं, हेरि अकाशहिं पास बुलावैं । हौला हाथ हला ॥ कहौं कहाँ लगि "रस रंग" भाषैं, देखहिं लीला देव अकाशैं । कहि कहि भला भला ॥ चं० मा० ३३ ॥ ठुमकि ठुकमि पग चाल निरखि जननी सुख पावैं । गिरत उठत फिरि चलत राम हँसि सबहिं रिझावैं । बाल सुकुमार धाय भूप ढिग जाय जाय, बोलैं तोतरे बैन नृपति लै कण्ठ लगावैं ॥ मेवा पकवान आन खावैं सब भ्रात संग, चइयाँ मइयाँ नाचि चौक में खेल रचावैं । आनन्द अपार लेत मातु सब हेरि हेरि कहि कहि अइता कन्त अँगुरियन पास बुलावैं ॥ भइ बड़ि बार देखि लियो गोद में उठाय, बार बार मुख चूमि लाल पलना पौढ़ावैं ॥ सोइबे के काज गीत गावतीं दराज सब, सोजा बारे बीर झुलनवाँ झमकि झुलावैं ॥ पावतीं अनन्द मातु नन्द रामचन्द देखि, निशि दिन दीन रमेश दर्श हित चाह बढ़ावैं, हो निरखि जननी सुख पावैं ॥ ३४ ॥ जग पालक खेलि रहे पड़े पड़े पालना, छटा को निहार जरा होश को सँभलना । जगर मगर कान्ति होति बालरूप नाथ की, लहर लहर अलकैं अरु झलकैं प्रिय माथ की । टुकुर मुकुर हेरनि को पूछो कछु हालना ॥ छटा० ॥ किलकारी देत हँसि कैसे के बखानिये, बताना कवित्त सकै चित्त बीच जानिये, मोहनीसी डारि रह्यो कौशिला को ललना ॥ पीत पीत अँगुली अरु स्वेत स्वेत पहुँचियाँ हिलत बाँह प्यारी लगै नीलमणि कौंचियाँ । नजर ना लगाना कोई सँभल नजर डालना॥ संतमण्डल मौज बढ़ी देखि बारबार हैं,मोह गये "रसरंगमणि" हो गये बलिहार हैं । बना रहे यही ध्यान रहे और ख्यालना ॥ छटा०॥ ३५ ॥

प्रभु नाचैं बीच अँगनियाँ । छम छम बाजै पैंजनियाँ ॥ नवनील घटा तन सोहत है, झँगुली चंचल लखि मोहत है । कटि में सोहत करधनियाँ ॥ छम० ॥

मणि खम्भ लखत निज छहियाँ हैं,किलकैं ऊँचोकरि बहियाँ हैं। हरखैं लखिलखि सब रनियाँ॥ कर मोदक ताहि बतावत हैं, खेलन हित पास बुलावत हैं। चितवैं चंचल चितवनियाँ॥ जननी निज ओर बुलावत हैं, प्रभु ठुमुकि ठुमुकि चलि आवत हैं। नित लावैं अपनी कनियाँ। लालन को कण्ठ लगा करके, "मण्डल विहार" रस पा करके। लालन से लगी लगनियाँ॥ छम०॥ ३२॥ सखन सँग खेलत आनन्द कन्द। रामलखन अरु भरत रिपुदवन, छविनिधि चारिहुँ चन्द॥ एक एक को भजि भजि पकरत, गिरत उठत स्वच्छन्द। जोरी जोरी हाथ पकरि कै, नाचत भरि आनन्द॥ ठुमकि ठुमकि पग धरत अवनि पर, कहत हेरि हँसि मन्द। तोतरे बैन ऐन सब सुख के, सुनत मिटैं दुख द्वन्द॥ मणि आँगन प्रतिविम्ब निरखि निज, सकुचत श्रीरघुनन्द। मोसम बालक अपर कौन यह, सोचत सुषमाकन्द॥ पूप पवावन चहत वाहि प्रभु, किलकत भरे उमंग। तेहि ढिग चले चलेउ सो लखि मुसुकात रंगे रस रङ्ग॥ लखि लखि माता पिता मुदित मन, पावत परमानन्द। सब "गुणशील" स्वरूप मनोहर, चिरजीवें चहुँचन्द॥ ३३॥ आनन्द अकथ अपार अवध में। आज लाल की छटी सोहावन, पुरजन हिय उद्‌गार॥ बन्दनवार वितान पताका, रचना रची उदार, गावत सरस बधाई प्रमुदित नृत्यत हिय भरि प्यार॥ चन्दन अगर अरगजा छिरकत, बिविध सुगन्धन डार। उड़त अँवोर लाल भय बादर, बरसत रँग रस धार॥ हर्षित देवत सुमन वर्षावत, बोलत जय जयकार। गुनशीला चिर जियें कुँवर सब, यह अभिलाष हमार॥ ३४॥

चहुँ श्रुति के सार प्रगटे राम रघुराई। नवमी चैत सित पावन सबनि मन भावन, सुमोद बढ़ावन। दिन मंगलवार प्रगटे राम रघुराई॥ अभिजित मुहूरति आई, जगत सुखदाई, महाछवि छाई। सन्तन रखवार प्रगटे राम रघुराई॥ पुरजन सनेह समाये, नृपति गृह आये, बधाई लाये। हिय भरि उद्‌गार, प्रगटे राम रघुराई। चन्दन अगर छिरकावैं, अँबीर उड़ावैं, हृदय सुख पावैं। नृत्यत भरि प्यार, प्रगटे राम रघुराई॥ सब मिलि बधाई गावैं, मोद वर्षावैं, भान बिसरावैं। निज सर्बस वार, प्रगटे राम रघुराई। सुरगन ब्योम में छाये, हृदय हर्षाये, सुमन वर्षाये। कहि जय जयकार, प्रगटे राम रघुराई॥ राजा परम सुख पाये, कोष खुलवाये, सबनि मन भाये। दिय दान अपार, प्रगटे राम रघुराई॥ गौयें विपुल मँगवाईं, सिंगार सजाईं, द्विजन दिलवाईं। मणि मोतिन हार, प्रगटे राम रघुराई॥ मङ्गल बधाई गावै, भक्तिवर पावै, ललन ढिग जावै। गुनशीला बलिहार, प्रगटे राम रघुराई॥३५॥ प्रगटे आनन्दकन्दा अवधपुर आनन्द छाये। श्रीमधुमास सोहावन पावन शुक्लपक्ष नौमी मनभावन। सन्तन मन आनन्दा॥अवध०॥ मध्यदिवस शुचि सुखद सुअवर, करहिं गान गन्धर्व मधुरस्वर मिटे सकल दुखद्वन्दा॥ अवध०॥ पुरनर नारि भाव भरि गावैं, नृत्यहिं सम्पति सकल लुटावहि। उरगत भरे उमङ्गा॥ अवध०॥ अँबिर उड़ावहिं धूम मचावहिं रसमयि

बधाइ बजावहिं । वर्षावहिं रसरंगा ॥ अवध० ॥ देव सुमन वर्षत हिय हर्षत, गायगीत सबको मन कर्षत । वर्षत परमानन्दा ॥ अवध० ॥ नृत्यहिं नेहभरीं, सुरनारी, पावहिं हिय विच मोद अपारी । लखि लखि रघुकुल चन्दा ॥ अवध० ॥ बन्दीविरद भाट गुन गावत, चहूँ ओर जय जय धुनि छावत । पढ़त वेद द्विज वृन्दा ॥ अवध० ॥ नृप प्रमुदित मणि रतन लुटावहिं, याचकजन अतिशय सुख पावैं । नृत्यहिं अति स्वच्छन्दा ॥अवध०॥ "सीताशरण" रहौं बलिहारी रघुवर मुखमाधुरी निहारी । चिरजीवैं रघुनन्दा ॥अवध०॥ ३६ ॥ रघुपति बालकेलि अति भावत । पग घुँघुरू रुणकार श्रवण सुनि, चकृत घुटुरुवन धावत ॥ भणिमय अजिर निरखि निज आभा, पकरैहू नहिं पावत । लोटत लोचन मूंदि रुदन करि, मानत नाहि मनावत ॥ श्यामगात कटि लाल करधनी बघनख उर बनि आवत । कुन्चित केश कमलमुख मानौ, मधुपावलि लपटावत । पण्डित गिरा वदत बागा जब माता मोद न मावत । बालचरित्र विश्व मोहन वपु, "अग्रअली" गुन गावत ॥३७॥

रानि कौशिला सुवन सोवावति । थपथपाइ प्रिय पाणि हरुअमृदु, लालवत्स कहि भावति ॥ श्याम सुखद लखि लोरी गा गा, पलना मधुर झुलावति । मोरे लालहि आवो री निंदिया, शान्ति सुखहि सरसावति ॥ दूधौदन तोहि भोजन देहौं, मान कही आ धावति आस आव अब आँखिन राखी, लाल ललित अस गावति ॥ आलस भरि शिव सर्वस सोये, रामलला छवि छावति । "हर्षण" जननि रंगी वात्सल्यहिं निरखि नयन सुख पावति ॥ ३८ ॥ राजत राम भूप की कनियाँ । नीलमणी-घनश्याम सरोरुह, बदन सरस सुठि सुख की खनियाँ ॥ सुठि सुन्दर माधुर्य महोदधि, कोमल लावण्य ललित लुभनियाँ । नयन विशाल पीतपट पहिरे, घनविच विद्युत वर्ण सुहनियाँ ॥ कोटि भानु सम परम प्रकाशित, छोटी कुण्डल क्रीट छोहनियाँ । चन्दन चर्चित स्रग सुगन्ध मय, अँग अँग भूषण भव्य शोभनियाँ ॥ सुर नर मुनि गन्धर्व सुकिन्नर, सेवित बाल विनोद मोहनियाँ । "हर्षण" आनँद आनँद वर्षत, भीजत सरसत सकल भुवनियाँ ॥ ३९ ॥ ठुमुकि ठुमुकि नचतराम चंचल चित चोरे ॥ नूपुर रुनझुन बजाय, मुसुकि मुसुकि मन मोहाय । नयन सुधा सींचि सींचि, गावत भल भोरे ॥ चहत चापलइन हाथ, क्रीड़नहित बाला साथ । वेद वेद्य ब्रह्म नचत, प्रेम विवश होरे ॥ देखि देखि रामचन्द्र, मातु मनहिं अति अनन्द । प्रेमपगी सुधिहि भूलि, नयननीर वोरे ॥ अंचलीन लालकि लाला चूषति रस भरि रसाला । हर्षि हृदय हेरि हेरि "हर्षण" तृण तोरे ॥ ४० ॥

मालिनियाँ बाँधो री बाँधो री बन्दनवार । रानी कौशिला ढोटा जायो, गावो री गावो री मंगलचार ॥ सजि नव सप्त सबै मिलि भामिनि, साजो री साजो री मंगलथार । "मधुपअली" मुख निरखि लला को, तन मन धन सब वार ॥ ३८ ॥ माँ आनन्द मंगल गावो री । दरश परश सुख पावो गुन गावो । धीं धा धुम किट क्राण क्राण ताथेई ताथेई नि नि ध ध नि म प दरसा बीन बजावो ॥ आज लाल की बरस गाँठ है री, सुनि

सुनि मोद बढ़ावो सुख पावो। "श्यामदास" दृग भरि रस लीजै री. नैन सो नैन मिलावो सुख पावो ॥ ३६ ॥ बीन लिये नारद पितामह सारंगि लिये, मारुत सितार मुरचंग लिये शेष हैं। ताल लिये बरुण कुबेर करताल लिये, झाँझ लिये मृदंग अमरेश हैं ॥ गावैं गुण सनक सनन्दन गणेश गण, उन्चास कोटि तान लेत चन्द्रमा दिनेश हैं। "लाल" कहैं अवध में दशरथ जू के लाल भये, झूमि झूमि सभा मध्य नाचत महेश हैं ॥ ४० ॥

❀ श्रीजानकी जन्मोत्सव प्रसंग ❀

श्रीरामजन्म से प्रतिवर्ष श्रीराम नवमी के पावन अवसर पर भूलोक के सभी राजा श्रीअवध में आकर श्रीरामजी की वर्ष गाँठ में उपस्थित होकर उस महामहोत्सव का परमानन्द प्राप्त करते थे। जिसके लिये बड़े, बड़े अमलात्मा मुनिवृन्द और देवता भी सर्वदा लालायित रहते हैं। तदनुसार महाराज श्रीमिथिलानरेश श्रीविदेहजी भी प्रति वर्ष श्रीअवध में आकर श्रीरामजी की वर्षगाँठ में भाग लेते थे। अपने ही वंशज होने के कारण चक्रवर्ति श्रीदशरथजी महाराज श्रीमिलिथाधिराज का बहुत आदर सत्कार करते थे। जब श्रीरामजी की आठवीं वर्षगाँठ थी, उस उत्सव में प्रतिवर्ष की भाँति सभी राजा तथा श्रीमिथिलेशजी श्रीअवध आये। यद्यपि श्रीरामजी चराचर जगत् को परम् प्रिय थे। तथापि प्रभु की लीलामय संकल्प होने के कारण इस वर्ष श्रीविदेहजी को श्रीरामजी में अत्यन्त आकर्षण हुआ। मन में भावना होने लगी कि यदि श्रीरामजी से हमारा कोई निजी सम्बन्ध हो जाये, तो हमको इनकी सेवा सत्कार करने का विशेष रूप से समय प्राप्त होगा। उत्सव पूर्ण होने पर इसी विचार में निमग्न श्रीमिथिलाजी लौट आये। उस समय श्रीविदेहजी के एकमात्र श्रीलक्ष्मीनिधिजी ही थे। अन्य सन्तान न थी। महाराज ने ऋषियों मुनियों एवं ब्राह्मणों को एकत्रित करके अपनी भावना पूर्ति का उपाय पूछा, तब मनीषियों ने कहा कि–श्रीरामजी के पिता का सम्बन्ध श्रीदशरथजी ने और गुरु सम्बन्ध श्रीवशिष्ठजी ने प्राप्त कर लिया है। विशिष्ट सम्बन्धों का एकमात्र श्वशुर का सम्बन्ध ही शेष है, उसे आप प्राप्त कर सकते हैं। किन्तु आपके कोई कन्या नहीं है, तब श्री विदेह जी ने निवेदन किया कि आप सब ऋषियों की कृपा से मेरे एक कन्या होना क्या दुर्लभ कार्य है। अस्तु आप सब सविधि पुत्रेष्ठि यज्ञ सम्पादन करवाइये! फिर क्या था' यज्ञकार्य कुशल ब्राह्मण विद्वान यज्ञ की तैयारी करवाने लगे।'

इसी बीचमें प्रभु प्रेरणासे मिथिला प्रदेशमें कुछ दिनोंसे लगातार। (अनावर्षण) हो रहा था। प्रजावर्ग भूख प्यास से दुखी हो गई थी। श्री विदेहजी तो सत्संग में सर्वदा ब्रह्म निरूपण करने और सुनने में निमग्न रहते थे, राज्य का कार्यभार मन्त्रियों के संकेत पर चलता था। इसलिये वे प्रजा के समाचारों से अवगत नहीं थे। वहाँ तो

नित्य इस प्रकार की चर्चा होती थी, जिसमें संसार अनित्य है, और एकमात्र ब्रह्म ही सत्य है। महर्षिगणों से दरबार भरा रहता था। प्रजावर्ग जब अत्यन्त पीड़ित हो गई, तब एक दिन बहुत से व्यक्ति मिलकर दरबार में महाराज को अपनी परिस्थिति निवेदन करने के विचार से गये। वहाँ पर इस प्रकार की चर्चा हो रही थी। श्रीविदेहजी महाराज इस प्रकार ब्रह्म शब्द की व्याख्या कर रहे थे।

ब्रह्मशब्दार्थ—अणोरणीयान्महतो महीयान कठोपनिषद् १-२-२० के अनुसार व्याख्या—बृहति वर्द्धते-निरतिशय महत्व लक्षण-वृद्धिमान भवति-इस व्याख्यानुसार महतोमहीयान आद्याशक्ति का अर्थ हो गया। म का अर्थ--मसिपरिमाणे धातु के अनुसार—अणोरणीयान् का अर्थ अणु आत्मा का भी उरप्रेरक परमात्मा अणु से भी अणु है। अर्थात् प्रेरक परमात्मा महानों में महान् आद्या शक्ति के और अणु आत्मा के भी प्रेरक हैं। यह ब्रह्म शब्द – रामेति किल वर्णाभ्यां ब्रह्मेतिप्रतिपाद्यते, इस बृ० ब्र० संहिता पाद दो अ०-७, श्लो०-७ के अनुसार राम ब्रह्म हो गया॥ अतः उर प्रेरक रघुवंशविभूषण मानस की चौपाई चरितार्थ है। ब्रह्म शब्द में–ब, र्, ह्, अ,म्, अ,में छै अक्षरोंका संयोग है। अतः ये छै अक्षरों का अर्थ भी ऐसा है कि ब-बल धातु में 'ड' प्रत्यय करने से-- बुटावट, बुवाई, वरुण, घड़ा, योनी, समुद्र, जल, गमन, तन्तु, सन्तान सूचनादि अनेकार्थक है। र का ड, प्रत्यय करने पर अर्थ-अग्नि, गर्मि, ताप, प्रेम, वेग, रफ्तार(चाल), सोनादि अनेकार्थ है। अगस्त संहितामुसार र काराज्जायते ब्रह्मा राकाराज्जायते हरिः राकाराज्जायते शम्भू राकारात्सर्वशक्तयः॥ अर्थात् रकार से ब्रह्मा विष्णु महेश सब शक्तियाँ उत्पन्न हुई हैं। ह को ड, प्रत्यय अपने से पूर्व के शब्द पर जोर देने वाला है, अव्यय पद का अर्थ--जल, आकाश, रक्त, शून्य, शिव, स्वर्ग, ध्यान, धारण, शुभ, भव, ज्ञान, गर्व, वैद्य, कारण, चन्द्र, विष्णु, अश्व, युद्ध, हाश, हरण, वारण, सूखना, निन्दा, प्रसिद्धि, नियोग, आह्वान, अस्त्र, वीणा, स्वर, आनन्द, ब्रह्मादि, अनेकार्थक है। सारं ततो ग्राह्य मपास्य फल्गुः हंसैर्यथा क्षीर मिवाम्बुमध्यात्॥ अस्तु ह भी अनेकार्थक है। अ-- अवरक्षण से परमात्मा की विरदावली तथा-अकारो वासुदेवस्या दाकारश्च पितामहः। अक्षराणा मकारोऽस्मि--आदि अकार से आकार का अर्थ परमात्मा का ऐश्वर्य या आकाश अथवा अन् कर देने से अ का अर्थ नहीं इस प्रकार निषेधार्थक भी होता है। तात्पर्य हुवा कि ब, र, ह, के शिवाय म, अ नहीं है। अर्थात् सत्तामान् की सत्ता रूप में ही म अ है अन्यथा नहीं है। इस स्थान में म अ आत्मा और आचार्य कहे जायेंगे म आत्मा अ-आचार्य इति म का अर्थ पचीशवाँ अक्षर होने से प्रकृति से परे आत्मतत्त्व कहा जाता है जैसा की महाभारत शान्ति पर्व अ० ३१८ के श्लोक ५६ में लिखा है—

अन्यश्च शाश्वतोऽव्यक्त स्तथान्यः पञ्चविंशकः। तस्य द्वा वनु पश्येतां तमेक मिति साधवः॥५६॥ वहीं पर आगे अ० ३३८ में श्लोक २३ २४-२५—

भूत ग्राम शरीरेषु नश्यत्सु न विनश्यति ॥ अजो नित्यः शाश्वतश्च निर्गुणो निष्कलतस्था ॥२३॥ द्विर्द्वादशेभ्य स्तत्वेभ्यः ख्यातो यः पञ्च विंशकः ॥ पुरुषो-निष्क्रियश्चैव, जानदृश्यश्चकथ्यते ॥ २४ ॥ वहीं पर आगे—यं प्रविश्य भवन्तीह मुक्तावै द्विज सत्तमाः स वासुदेवो विजयेः परमात्मा सनातनः ॥ २५ ॥ वहीं पर अध्याय ८ श्लोक १७ में—षड्विंशेन प्रबुद्धेन बुध्यमानोऽप्यबुद्धिमान् एतन्नाना-त्वमित्युक्तं सांख्य श्रुतिनिदर्शनात् ॥ १७॥ फिर इसी अध्याय में आगे श्लोक २० में कहते हैं कि—निःसंगात्मानमासाद्य षड्विंशकमजंविभुम् । विभुस्त्यजात चा व्यक्तं यदात्वेत द्विबुध्यते ॥२०॥ चतुर्विंशमसारं च षड्विंशस्य प्रबोधतात् । वहीं पर आगे अध्याय ३१८ में लिखा है कि—न तु पश्यति पश्यस्तु यश्चैनमनु-पश्यति पश्चविंशोभिमन्येत नान्योऽस्ति परतोमम ॥ ७३ ॥

अर्थ—याज्ञवल्क्य विश्वावसु कहते से कहते हैं—सनातन परमेश्वर छव्वीशवाँ तत्व अन्य है, तथा अव्यक्त पच्चीशवाँ तत्व अन्य है ऐसा देखा जाता है, परन्तु भजन प्रविष्ट सन्तजन सेवक सेव्यभाव से एकता देखते हैं । जैसे अंग अंगी एक होता है । इसी प्रकार और भी लिखा है ॥ ५६ ॥ पञ्चभूत मय नाशवान् शरीरों में जो अजन्मा नित्य सनातन निर्गुण निष्कल तथा ॥ २३ ॥ चौबीशतत्वों से परे पच्चीशवां तत्व जो प्रसिद्ध पुरुष हैं, वह निष्क्रिय तथा निष्फल ज्ञान दृश्य कहा जाता है ॥ २४ ॥ सनातन परमात्मा पच्चीशवाँ तत्त्व वासुदेव जानने योग्य हैं। जिसमें प्रवेश होने से द्विज श्रेष्ठ मुक्त होते हैं ॥ १४ ॥ यह पच्चिशवाँ तत्व आत्मा छव्वीशवाँ तत्व परमात्मा से प्रेरित होकर ही अपने स्वरूप को भूलकर प्रकृति मण्डल में विविध रूप धारण करता है। जैसा कि सांख्य शास्त्र व श्रुति वचनों से कहा जाता है ॥ १७ ॥ छब्बिशवाँ तत्व तो अजन्मा सर्व व्यापी परमात्मा है । संग दोष से रहित है, उसी के जगाने से यह आत्मा परमात्मा की शरणागति प्राप्त करके सार रहित चौबीश तत्वों को त्याग सकता है । यदि जीवात्मा यह अभिमान करता है कि मुझसे बढ़कर दूसरा कोई नहीं है । तब जो परमात्मा उसे सर्वदा निरन्तर देखता है, वह उसको देखता हुआ भी नहीं देखता है । इस श्लोक का मतलब हुवा कि भगवत भक्ति बिना भगवान् कृपादृष्टि नहीं करते हैं ॥ ७३ ॥

दोहा—बृहद्धातु अतिशय वृहद मनिषेध अति छोट । प्रेर्य शक्ति व्यूहादि पर प्रेरक अणु अणु ओट ॥ १ ॥ अर्थ ब्रह्म शब्द को जो अणोरणीयान् महतो महीयान् पूर्व अर्थ कर आये हैं । वहीं पर यह दोहा भी कहते हैं, कि बड़प्पन की सीमा वृहद् से तथा म निषेध वाचक होने से अति छोटा अणु आत्मा का भी उरप्रेरक परमात्मा हैं। अर्थात् महाशक्ति चारपाद विभूतिरूप में है तो प्रेरक भी छोटा बड़ा सबका प्रेरक है॥१ दो०-ब्रह्म शब्द को अर्थ दुइ रूढ़ी योगिक भेद । यौगिक प्रेरक कहत हैं रूढ़ी प्रेय विभेद ॥२

लोगों को ब्रह्म शब्द पर विविध भ्रम होते हैं अतः कहते हैं कि ब्रह्म शब्द का अर्थ रूढ़ी यौगिक भेद से दो प्रकार का है—यौगिक शब्द का यथार्थ अर्थ, जैसे पहले कह आये हैं। और रूढी माने विना अर्थ का लोक प्रसिद्ध नाम है। जैसे किसी भिख-मंगी का नाम लक्ष्मी है और अमरसिंह मर गया है। और एक राक्षस का नाम ब्रह्म है। परन्तु विशेष करके ब्रह्म शब्द का अर्थ दिव्य, अविनाशी, नित्य है क्योंकि प्रेरक परमात्मा का प्रेर्य दिव्य नित्य पदार्थ है। जिनको चैतन्य विभूति कहा जाता है ॥ २ ॥ दो०-शक्ति पुरुष रघुवर सिया शिव उर निवसत जोइ। रमण अकेले होत नहिं राम कहावैं दोइ ॥ ३ ॥ अर्थ—परात्पर ब्रह्म दो दलक बीज रूप में शक्ति एवं शक्तिमान श्रीसीताराम जी हैं, जो श्रीशंकरजी के इष्टदेवता हैं। वे ही रम्य रमण कहे जाते हैं। क्योंकि अकेले रमण नहीं हो सकता है अतः दोनों को राम कहा जाता है। इसी भाव पर गिरा अर्थ जल वीचि सम कहियत भिन्न नभिन्न। पूज्यपाद श्रीगोस्वामीजी का मत है ॥३॥ दो०-अणोरणीयान् श्रुति कहत महत महा यह ज्ञान। शक्ति व्यूह पर महत सिय प्रेरक राम सुजान ॥४॥ अर्थ—कठोपनिषद १-२-२० इस मन्त्र का अर्थ पहले कर आये हैं उसी को यह दोहा भी कहता है कि ज्ञान स्वरूप पच्चीशवाँ तत्व को प्रेरक स्वरूप छब्बीशवां तत्व इच्छा द्वारा क्रिया द्वारा क्रियाशक्ति देकर परावाणी से राग पैदाकर व्यूहाकार ज्ञान शक्ति बल ऐश्वर्य तेज वीर्य का विस्तार करते हैं ॥ ४ ॥

दोहा-ज्ञान तुरीया राग रस आहत अनहद ओम्। शब्द क्रिया अह्लाद छवि तेज विन्दु बल सोम ॥ ५ ॥ अर्थ—अब आहत अनद भेद से शब्द ब्रह्म अ उ म् विभागों कर ज्ञानाकार तुरीयावस्था को आनन्द रैस मय राग पैदा करके ज्ञान स्वरूप वासुदेव ने कई प्रकार की दिव्य सृष्टि पैदा की जो अमृत श्रावी है जैसा कि यजुर्वेद संहिता अ० ३१ मन्त्र ४ में त्रिपादूर्द्ध्व मुदैत्पुरुषः पादोस्येहाभवत्पुनः ॥ ५ ॥ अर्थात् प्रद्युम्न शंकर्षण वासुदेव के तीन पाद विभूतियों के ऊपर प्रेरक पुरुष बिराजमान् हैं। जैसा कि वृ० ब्र० सं० पा० १ अ० १३ के श्लोक १४६ में लिखा है—प्रद्युम्न शंकर्षण वासुदेवा इतित्रयः त्रिपाद विभूति राख्याताः और भी वहीं वह पा० २ अ० ७ श्लोक २६—वासुदेवादि मूर्तीनां चतुर्णां कारणं परं चतुर्विंशति मूर्तीनां माश्रयः शरणं मम ॥२६॥ नित्यमुक्त जनैर्जुष्टोनिविष्टः परमे पदे। पदं परम भक्तानां श्रीरामः शरणं मम ॥ २७ ॥ इस प्रकार नित्य पार्षदों से युक्त त्रिपाद विभूतियों में विहार करने वाले श्रीरामजी की महिमा वर्णन है ॥५॥ दो०—सूर्य प्रभा सम राम दुइ प्रभा अंश सब भूति। प्रेरक सूर्य समान है सदसत्तत्त्रय मूर्ति ॥६॥ अर्थ—श्रीसीताराम जी सूर्य व प्रभा समान दो होते हुवे भी एक हैं, प्रभा के अंशों से चार पाद विभूति है। प्रेरक रामजी सूर्य सदृश दिव्य गुण-सागर सगुण साकार नित्य विभूतियों में विराजमान हैं। सत विभूति त्रिपाद है, और जैसा कि गीता अ० १७ श्लोक २३ में—ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्राह्मणस्त्रिविधिः स्मृतः॥

लोगों को ब्रह्म शब्द पर विविध भ्रम होते हैं अतः कहते हैं कि ब्रह्म शब्द का अर्थ रूढ़ी यौगिक भेद से दो प्रकार का है—यौगिक शब्द का यथार्थ अर्थ, जैसे पहले कह आये हैं। और रूढी माने बिना अर्थ का लोक प्रसिद्ध नाम है। जैसे किसी भिख-मंगी का नाम लक्ष्मी है और अमरसिंह मर गया है। और एक राक्षस का नाम ब्रह्म है। परन्तु विशेष करके ब्रह्म शब्द का अर्थ दिव्य, अविनाशी, नित्य है क्योंकि प्रेरक परमात्मा का प्रेर्य दिव्य नित्य पदार्थ है। जिनको चैतन्य विभूति कहा जाता है॥ २॥ दो०-शक्ति पुरुष रघुवर सिया शिव उर निवसत जोइ। रमण अकेले होत नहिं राम कहावैं दोइ॥ ३॥ अर्थ–परात्पर ब्रह्म दो दलक बीज रूप में शक्ति एवं शक्तिमान श्रीसीताराम जी हैं, जो श्रीशंकरजी के इष्टदेवता हैं। ये ही रम्य रमण कहे जाते हैं। क्योंकि अकेले रमण नहीं हो सकता है अतः दोनों को राम कहा जाता है। इसी भाव पर गिरा अर्थ जल वीचि सम कहियत भिन्न नभिन्न। पूज्यपाद श्रीगोस्वामीजी का मत है॥३॥ दो०-अणोरणीयान् श्रुति कहत महत महा यह ज्ञान। शक्ति व्यूह पर महत सिय प्रेरक राम सुजान॥४॥ अर्थ--कठोपनिषद १-२-२० इस मन्त्र का अर्थ पहले कर आये हैं उसी को यह दोहा भी कहता है कि ज्ञान स्वरूप पच्चीशवाँ तत्व को प्रेरक स्वरूप छव्वीशवां तत्व इच्छा द्वारा क्रिया द्वारा क्रियाशक्ति देकर परावाणी से राग पैदाकर व्यूहाकार ज्ञान शक्ति बल ऐश्वर्य तेज वीर्य का विस्तार करते हैं॥ ४॥

दोहा-ज्ञान तुरीया राग रस आहत अनहद ओम्। शब्द क्रिया अह्लाद छवि तेज विन्दु बल सोम॥ ५॥ अर्थ—अब आहत अनद भेद से शब्द ब्रह्म अ उ म् विभागों कर ज्ञानाकार तुरीयावस्था को आनन्द रस मय राग पैदा करके ज्ञान स्वरूप वासुदेव ने कई प्रकार की दिव्य सृष्टि पैदा की जो अमृत श्रावी है जैसा कि यजुर्वेद संहिता अ० ३१ मन्त्र ४ में त्रिपादूर्द्ध मुदैत्पुरुषः पादोस्येहाभवत्पुनः॥ ५॥ अर्थात् प्रद्युम्न शंकर्षण वासुदेव के तीन पाद विभूतियों के ऊपर प्रेरक पुरुष विराजमान हैं। जैसा कि वृ० ब्र० सं० पा० १ अ० १३ के श्लोक १४६ में लिखा है—प्रद्युम्न शंकर्षण वासुदेवा इतित्रयः त्रिपाद विभूति राख्याताः और भी वहीं वह पा० २ अ० ७ श्लोक २६—वासुदेवादि मूर्तीनां चतुर्णां कारणं परं चतुर्विंशति मूर्तीनां माश्रयः शरणं मम॥२६॥ नित्यमुक्त जनैर्जुष्टोनिविष्टः परमे पदे। पदं परम भक्तानां श्रीरामः शरणं मम॥ २७॥ इस प्रकार नित्य पार्षदों से युक्त त्रिपाद विभूतियों में विहार करने वाले श्रीरामजी की महिमा वर्णन है॥५॥ दो०—सूर्य प्रभा सम राम दुइ प्रभा अंश सब भूति। प्रेरक सूर्य समान है सदसत्तत्रय मूर्ति॥६॥ अर्थ—श्रीसीताराम जी सूर्य व प्रभा समान दो होते हुवे भी एक हैं, प्रभा के अंशों से चार पाद विभूति है। प्रेरक रामजी सूर्य सदृश दिव्य गुण-सागर सगुण साकार नित्य विभूतियों में विराजमान हैं। सत विभूति त्रिपाद है, और जैसा कि गीता अ० १७ श्लोक २३ में—ॐ तत्सदिति निर्देशों ब्रह्मणस्त्रिविधिः स्मृतः॥

सत् असत् ये दोनों प्रकार के विभूतियों का सत् पद बाच्य प्रेरक ने ॐ इस प्रणव द्वारा प्रेरणा करके प्रथम त्रिपाद् को स्मरण किया, फिर वेदों द्वारा ब्रह्मा से एक पादस्थ सृष्टि कराई, तब यज्ञों का विधान किया ॥६॥ दोहा-यौगिक ब्रह्म त युगल इक रूढ़ीब्रह्म अनेक ॥ कार्य सु कारण रमणता शब्द सूत रस टेक ॥ ७ ॥ अर्थ—शब्द वाच्य यौगिक अर्थ में दो श्रीसीतारामजी दो होते हुवे भी एक हैं, इस बात को पहले कह आये हैं, अब रूढ़ी अर्थ में कितने ब्रह्म हैं सो गिना रहे हैं। कोई को प्रेरक ने कारण बना रक्खा है कोई को कार्य रूप में प्रेरणा कर रक्खी है, इस तरह शब्द को परा पश्यन्ति मध्यमा बैखरी भेद से शब्द सूत में सबको गूँथकर रमण करते हैं। यह रामत्व है, जिससे रसोवैसः। रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दीभवति, यहतैतिरीयोपनिषद ब्रह्मवल्याध्याये सप्तमानुवाकानुसार यही त्रिपादीय रस को भगवत् सेवा रूप में प्राप्त होने से सामीप्य मुक्ति रूप पार्षदत्व प्राप्त होता है। अनन्त शक्ति सम्पन्न पार्षद भगवान के लिये भगवान् होते हैं ॥ ७ ॥

दो०—रूढ़ी ब्रह्म अनेक जो तिनको कहिये दिव्य। नाश न तिनको जानिये। प्रभु लीला रस सिव्य ॥ ८ ॥ अर्थ—दिव्य पदार्थ सब ब्रह्म शब्द से कहे जाते हैं। उनका नाश नहीं होता है, क्योंकि वे भगवान के लीला पात्र सच्चिदानन्द हैं, अतः भगवान् के प्रेर्य अंगभूत हैं, सेवामें लगे हैं, सेवक सेव्य भावसे ब्रह्म हैं ॥८॥ दो०-वेद ब्रह्म अवतार सब ब्रह्म प्रणव हूँ ब्रह्म ॥ ज्ञान ब्रह्म गुरु ब्रह्म हैं शब्द ब्रह्म खं ब्रह्म ॥ ९ ॥ अन्न ब्रह्म मन ब्रह्म है प्राण ब्रह्म सुख ब्रह्म। महत्प्रकृति हूँ ब्रह्म है व्यूह ब्रह्म त्वं ब्रह्म ॥ १० ॥ अर्थ—वेदों को ब्रह्म तथा सभी अवतार भी ब्रह्म कहे जाते हैं। ॐ को ब्रह्म ज्ञान को आत्मस्वरूप कहा जाता है। गुरु कृपा स्वरूप होने से ब्रह्म हैं, शब्द ब्रह्म है, आकाश तुरीया होने से ब्रह्म हैं अन्न आत्मा रूप है, अतः ब्रह्म है। मोक्ष मार्गस्थ मन ब्रह्म है, प्राण ब्रह्म है, आनन्द ब्रह्म है। ममयोनिर्महत्ब्रह्म गीता अ० ३ में महत्प्रकृति को भी ब्रह्म कहा गया है। वासुदेवादि चतुर्व्यूह सब ब्रह्म हैं, त्वंस्त्रं त्वंपुमानसि इस एकाक्षरोपनिषद ११वाँ मन्त्रानुसार त्वं पद वाच्य परमात्मा ब्रह्म है।

दो०—मोक्ष मुमुक्षू ब्रह्म है सत्य तुरीया ब्रह्म। ब्रह्म ज्योति सब ब्रह्म है राक्षसहूँ इक ब्रह्म ॥११॥ पञ्च देवहूँ ब्रह्म है सूर्य शक्ति शिव विष्णु। गुण गणपति तीरथ सकल ब्रह्म जानिये जिष्णु ॥१२॥ अर्थ—मोक्षस्थान भगवत धाम ब्रह्म है। मुमुक्षु आत्मा ईश्वर की प्राप्ति चाह वाला ब्रह्म है। सत्य ब्रह्म है, तुरीयावस्था ब्रह्म है, ज्योती स्वरूप भी ब्रह्म है सर्वंखल्विदं ब्रह्म है। सत्य ब्रह्म है एक जाती का राक्षस भी ब्रह्म है, सूर्य शक्ति शिव विष्णु गणेश ये पञ्च देव भी व्यस्टिक व सामूहिक ब्रह्म हैं। पवित्र स्थान तीर्थ भी ब्रह्म है,जय करने वाला जयिष्णु भी ब्रह्म है। दो०-आहत अनहद भेद सों अर्थ अर्थगुण ज्ञान। अक्षर अजर निर् अक्षरहूँ शब्द परात्पर जान ॥ १३ ॥ अर्थ—संगीत का स्वर और योगियों के समाधि अनहद का शब्द वेद वाणी का गुण अर्थ ज्ञान दिव्य वाणी प्राकृत

वाणी यह सब शब्द ब्रह्म का प्रभाव प्रेरक परमात्मा द्वारा प्रेरित होकर निरक्षर होकर निरक्षर ब्रह्म वासुदेवादि चतुर्व्यूहों को क्षर साकार रूप करोड़ों ब्रह्मांडों के रूपों में परिणत किया जाता है । इस प्रकार परमात्मा परापश्यन्ति मध्यमा वैखरी ये चार वाणियों से जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति ये सब अवस्थाओं में वाणी के ही द्वारा प्रेरणा करके जगत् व्यापार करते हैं, इस बात को जानना ही परात्पर ज्ञान कहा जाता है ॥१३॥ सगुण अगुण साकार अरु निराकार सब सत्य । लीला धाम सुनाम गुण रूप रंग बिबिसत्य ॥१४॥ अर्थ--भगवान की लीला भगवत् धाम में तथा नाम तथा गुण स्वरूप दिव्य अनन्त गुण संयुक्त कभी साकार कभी निराकार कभी निराकार में साकार कभी साकार में निराकार कभी उभय सत्य कभी असत्य मिश्रित भी सभी प्रकार सब सत्य नामों का अलग-२ रूप रंग प्रत्यक्ष करते हैं ॥ १४ ॥

दो०--सगुण बिना नहिं अगुण है, बिना साकार न कार । द्वैत नहीं अद्वैत तब शब्द जाय बेकार ॥ १५ ॥ अर्थ--साकार के बिना निराकार किसी प्रकार से सिद्ध नहीं हो सकता है । दिव्यगुणसागर परमात्मा के सत्य संकल्पता से ही संकल्प स्वरूपा भगवान् से बिपरीत गुण वाली माया परमात्मा की निर्गुण निराकार चैतन्य शक्ति के माया में प्रवेश करने पर तब माया परमात्मा के रूप में अविद्या जनित बिश्वरूप को प्रगट करके इस विश्व में से अनन्त चेतन जीवों को जोकी पहले निर्गुण निराकार चेतन शक्ति रूप थे, वे चेतन पहले माया द्वारा परमात्मा का रूप बनाकर माया में मोहित हो स्वर्ग नर्क रूप स्वरूप विरुद्ध सुख खोजने लगे, तब परमात्मा की दया से वेद आये वेदों द्वारा परमात्मा का धर्म आया उस, परमात्मा के धर्म ने माया को नष्ट किया । अतः आत्मा उन परमात्मा के ध्यान से परमात्मा के रूप में परिणित होकर वह चेतन आत्मा परमात्मा का सेवक रूप में वासुदेव स्वरूप होगया । अब आत्मा परमात्मा का सेवक रूप में संकल्प करके सेवा करने लगा । जो जो परमात्मा की इच्छा हो वही कार्य करने पर केवल परमात्मा के सुख की चाहना आत्मा ने की तब परमात्मा के भक्त वात्सल्य सौशिल्यादि गुण प्रगट होने लगे । जैसा भक्त ने भगवान् के लिये संकल्प किया, वैसा ही भगवान् ने भी भक्त के लिये संकल्प करके भक्त को भगवान् बना दिया अतः भक्त भगवान् के लिये भगवान् हैं । तो भगवान् भी भक्त के लिये भगवान् पना प्रगट करते हैं । इस प्रकार आत्मा से परमात्मा से सम्बन्ध होता है, इसी प्रकार तत्त्वमसि एवं सोहमस्मि शब्दों का अर्थ होता है । इसके विरुद्ध अद्वैत शब्द व्यर्थ हो जाता है । क्योंकि द्वैत चित्त अचित्त अन्तर्यामी का नित्य व्यवहार चला आया है । इसी बात को छान्दोग्य उपनिषद में अध्याय ६ खण्ड २ मन्त्र ३ में लिखा है--एक बार परमात्मा ने इच्छा की तो आत्मा परमात्मा की इच्छा रूप माया में प्रवेश कर गया तब आत्मा ने इच्छा की तो जल को (प्राण को) उत्पन्न करके प्राण स्वरूप माया में प्रवेशकर गया ।

इस प्रकार का सत्संग हो ही रहा था कि इतने में प्रजावर्ग अत्यन्त दीनावस्था से दरबार में उपस्थित होकर अपने अपने दुख निवेदन करने लगे। सभाभवन का दृश्य एकाएक परिवर्तन हो गया। सत्संग में ब्रह्मज्ञान रूपी दिव्य अमृत की वर्षा हो रही थी, वहाँ अनेक प्राणियों का दुःख भरा क्रन्दन होने लगा। उस विषम परिस्थिति को देखते ही श्रीविदेहजी अपनी सन्तान को देखकर वात्सल्यपूर्ण पिता की भाँति सिंहासन पर मूर्छा को प्राप्त हो गये। सभी महर्षिगण दुखार्णव में निमग्न हो गये। कुछ समय बीतने पर श्रीमिथिलेशजी प्रतिकस्थ (स्वस्थचित-सावधान) हुये। तब श्रीसतानन्दजी के यहाँ जाकर श्रीचरणों में मस्तक रखकर प्रणाम करके निवेदन किया कि--हे गुरुदेव! अब आप राज्य की व्यवस्था कीजिये। मैं राज्य कार्य चलाने योग्य नहीं हूँ। मेरे राज्यकाल में प्रजा को महान् कष्ट है। मैं ऐसा राज्य करना नहीं चाहता। तब श्रीसतानन्दजी ने कहा कि--हे राजन्! यह सब प्रभु का विधान है, आपका इसमें कोई दोष नहीं है। आप प्रसन्नचित्त से दरबार में जाइये। मैं आपके पुत्रेष्टियज्ञ की व्यवस्था कर चुका हूँ। कुछ ही दिन में यज्ञारम्भ हो जायेगा। यज्ञ भगवान् की कृपा से प्रजावर्ग सुखी हो जावेगी, और आपका मनोरथ भी पूर्ण हो जावेगा।

तब श्रीविदेहजी ने सतानन्दजी को प्रणाम करके दरबार में आकर मन्त्रियों से कहा कि राज्यकोष को खुलवा दिया जाये, सभी प्रजा की समुचित रूप से सुव्यवस्था की जाये। मेरी प्राणाधिक प्रिय प्रजा को स्वप्न में भी कष्ट नहीं हो। महाराज की आज्ञा पाते ही मन्त्रियों ने सभी प्रजावर्ग को आवश्यक सुविधायें प्रदान करके सुखी कर दिया। उधर श्री सतानन्दजी ने महर्षियों के सम्मत से यज्ञ भूमि का निश्चय किया। मनीषियों ने बताया कि यदि यज्ञ कार्य के लिये भूमि संशोधन कार्य को श्रीमिथिलेश जी महाराज रानी समेत स्वयं अपने हाथसे हलकर्षण करें, तो शीघ्र ही महाराज का मनोरथ पूर्ण और प्रजाका दुख दूर होगा। इसी प्रस्तावनानुसार निश्चित यज्ञभूमि मे अनेक महर्षियों विद्वान ब्राह्मणों का स्वागत सत्कार करके हल का पूजनकर श्रीजनकजी महाराज माता श्रीसुनैयना जी समेत हल चलाने लगे। कुछ दूर चलने पर हल एकाएक रुक गया। बैलों ने विशेष जोर लगाया तो एक विलक्षण घटना यह हुई, कि हल के आगे पृथ्वी में से जगमगाता हुआ एक सिंहासन प्रगट हो गया। उस सिंहासन को शेष जी अपने मस्तक पर धारण किए हैं। उस सिंहासन में पृथ्वी देवी विराजमान थीं। जिनकी अंक में कृपा, करुणा, क्षमा, दया, प्रेम और वात्सल्य की मधुर मंजुल मूर्ति श्रीमैथिली जू अपनी अभिन्नात्मा नित्य परिकरों से सेवित हो रही थीं।

उस मंगलमय दृश्य को देखकर देवता आकाश से फूल वर्षाकर जयजयकार करते हुये अनेक वाद्य बजाने लगे, विद्वान ब्राह्मण एवं महर्षिगण तथा मिथिलेशजी इत्यादि सब स्तुति करने लगे--

छंद :- जय जय अन्तर्यामिनि मन अभिरामिनि कृपामूर्ति सुख रूपम् ।
जय करुणाखानी जन सुखदानी मंजुल मधुर अनूपम् ॥
जय जय जग कारणि अधम उधारणि क्षमा रूप छवि सारम् ।
जय दया स्वरूपा वेद निरूपा जय हिय वढ़क प्यारम् ॥
जय शक्ति अनादी शिव ब्रह्मादी ध्यावत तव पद कंजा ।
जय प्रेम पियासिनि अज अविनासिनि हरनि सकल भ्रम पुञ्जा ॥
जय जय जग माता पद जल जाता ध्यावत हो भवपारम् ।
जय प्रीति प्रकाशिनि सब अघनाशिनि महिमा अकथ अपारम् ॥

दोहा—यहि विधि स्तुति करत सब, पावत परमानन्द ।
कृपासिन्धु की कृपा लखि, मिटे सकल दुख द्वन्द ॥

जब सभी लोग स्तुति से उपराम हुये, तब परम आह्लादिनि आदि शक्ति श्रीसीताजी श्रीमिथिलेश जी से कहने लगीं कि—

सवैया—हे मिथिलेश नरेश सुनैं, चित दै यह प्यार भरी मम बानी ।
पूरब आप कियो तप घोर, मिल्यो तुमको मैं मागि पानी ॥
मो छविपै तुम मुग्ध भये, अरु यह वर माँगि लियो सुखखानी ।
आप बनैं तनया हमरी, अरु पाहुन हों प्रभु जीवन दानी ॥

दो०-याही ते महि से प्रगट, भई लखो हर्षाय । तात सुता मोहिं जानि निज, लालिय सरल सुभाय ॥ वार्ता—हे मिथिलेश महाराज ! आपने पूर्व जन्म में वन में घोर तपस्या की थी । आपकी तपस्या को देखकर मैंने श्रीरामजी सहित आपको दर्शन दिया था । आपने मेरी छवि पर मुग्ध होकर यह वरदान माँगा था कि आप हमारी पुत्री हों । और ये श्रीरामजी हमारे पाहुन (दामाद) हों । इसीलिए मैं पृथ्वी से प्रगट हुई हूँ । अब आप मुझे अपनी कन्या मानकर वात्सल्य भाव से मेरा लालन पालन करके परमानन्द का समास्वादन करिये । तब श्रीजनक जी महाराज ने हाथ जोड़कर कहा कि—

सवैया :—हे करुणामयि भाव भरी, जन की रुचि राखनहार सयानी ।
हो तुम शील कृपा गुण सिन्धु, क्षमामयि मोहिं पिता निज मानी ॥
तो बिनती मम कान करो, शिशु रूप बनो हिय में सुख मानी ।
तो निसि बासर भाव समेत दुलार करौं निज जीवन जानी ॥

दो०:—यहि विधि नृप की विनय सुनि, विद्युत सी द्युति छाय ।
बन्द भये दृग सबनि के, दृश्य न परयो दिखाय ॥

चौ०:—शिशु स्वरूप बनि जग सुखदानी ॥ रोवन लगीं सरस प्रिय बानी ॥

छत्र सिंहासन परिकर वृन्दा ॥ भये अदृश्य भरे आनन्दा ॥
तब विदेह नृप सुता उठाई ॥ वात्सल्य भरि हृदय लगाई ॥
दीन सुनैना अंक मझारी ॥ वात्सल्य उमग्यो हिय भारी ॥
पयधर श्रवन लग्यो पय तबहीं ॥ लीन गोद महँ सीतहिं जबहीं ॥
तबहिं भई अति वृष्टि अपारा ॥ सुखी भयो सिगरो संसारा ॥
सीय कृपा मिथिला पुर माहीं ॥ सम्पति भरी दीन कोउ नाहीं ॥
अष्ट सिद्ध नव निधि हर्षाई ॥ घर घर बहु सम्पति प्रगटाई ॥

दो०:---- सुखी भये चर अचर सब, श्रीमिथिलापुर माहिं ।
दीन दुखी कोउ नहिं रहेउ, सब सम्राट लखाहिं ॥

तब श्रीजनक जी महाराज समाज समेत सानन्द अपने महल में पधारे । यज्ञ कपरम फलस्वरूप श्रीमैथिली जू का जन्मोत्सव करने लगे । नगर निवासी मातायें बधाई गाने लगीं । जिस दिन श्रीमैथिली जू प्रगट हुई थीं । उसी दिन श्रीमिथिलाजी में राजपरिवार और प्रजावर्ग के घर घर में श्री किशोरीजू की अंशभूता अनेक बालिकायें प्रगट हुई थीं । वह सभी परम सौन्दर्य मूर्ति थीं ।

❀ श्री जानकी बधाई मंगल पद ❀

मंगल गावो री हेली मन के भावने । मिथिलापति केरी हेली शंकर दाहिने ॥ छंद--दाहिने विधि शम्भु अमृत बरषिये वर्षा भली । जनक सुकृत भरे सागर सीय पंकज की कली ॥ प्रफुल ह्वै दिन वढ़ो सुयश निवास कीरति संग चली । अवध बन ते भँवर आवैं राम रसिया वर लली ॥१॥ मंगल गावो री हेली दिन दिन चौगुने । भाग सिहावो री हेली सब मिलि आपने ॥ छंद--आपने बड़ भाग जानो लागि सिय पद सब रहैं । जानि अपनी बालपन ते वर मिलें बहियाँ गहैं ॥ यह संग सब दिन सुलभ सजनी लली सेवन जो चहैं । बढ़ो सरस सोहाग स्वामिनि सहचरी पद हम लहैं ॥ २ ॥ महिमा गावो री हेली सुनैना भाग कीं । उमही है री हेली बेलि सोहाग की ॥ छन्द- उमही सबेलि सोहाग की बरबाग कोखि सोहावनी । अनुराग जल सों लागि पाल्यो सुरति मालिनि भावनी ॥ यह चाह टेक बढ़ाय मूरति लताललित लुभावनी । फूल ह्वै वरि माल दशरथलाल गर पहिरावनी ॥३॥ चौक पुरावो री हेली सोहिलो गाइये । जनम लख्यो है री हेली ब्याह मनाइये ॥ छंद--उर चाह धारिये ब्याह की वर राम आवैं पाहुने । यह लाभ हमको भूप प्रण हित शम्भु चाप तुरावने ॥ सियराम मण्डप ललित भाँवरि समय सरस सोहावने । यह आश "कृपा निवास" उर की विपुल मंगल गावने ॥ ४ ॥ १ ॥ आज महामंगल मिथिलापुर घर घर बजत बधाई री । कुँवरि किशोरी प्रगट भई हैं सबहिन की सुखदाई री ॥ ताही दिन ते

जनकपुरी में घर घर सम्पति आई री। द्वारे द्वारे बन्दनवारे अनगन आनन्द छाई री॥ चढ़ि बिमान सुर कौतुक देखैं नभ दुन्दुभी बजाई री॥ जनक लली को सोहिलो गावत पुष्प वृष्टि झरि लाई री॥ सुन्दर श्याम राम की प्यारी शोभा अधिक सोहाई री। "तुलसिदास" बलिहारी छवि पर भक्ति बधाई पाई री॥ २॥ अखिल लोक श्री उदय भई हैं जनकरायपुर जाई। निरमोपम कन्या निमिकुल की सीता ऐसे नाईं॥ बरनत विदुष पार नहिं पावत बानी रही लजाई। जाके चरण कमल भवनौका नाहिन आन उपाई॥ निगमसार सामान सुयश जाको कहत तपो धन आई। ब्रह्म रुद्र अजहूँ पद आश्रित "अग्रअली" बलि जाई॥३॥

नमो नमो श्रीजनकलली जू। जनमत भई विदेह नृपति ग्रह कीरति त्रिभुवन उमगि चली जू॥ मिथिला आलवाल निमिकुल की सुकृति सुवेली सुफल फली जू। बीनत मुनि माली ब्रह्मादिक बालचरित मृदु कुसुमकली जू॥ पटदल गुण सम्पति परिपूरण चितवत अनुपम रूपकली जू। कृपा विवश सौरभ प्रेमाभर सेवत अलि बड़भाग भली जू॥ "शूरकिशोर" निगम जल सींचत मायिक गुण एकौ न रली जू॥ अवलम्बन रघुबीर कलपतरु भइ भूपर उपमा अतुली जू॥ ४॥ जय जय जय श्रीस्वामिनि सीता। बरष गाँठ जा दिन सिय आयो, भायो सब जग भयो अतीता। जहँ तहँ लोक अशोक बिलोकत कोउ न रह्यो सुख आनन्द रीता। श्रीमिथिलेश सुनयना रानी आप बजावत गावत गीता॥ ज्ञानी ध्यानी अभिमानी सब, कहत अबस हे रघुबर सीता। "श्रीजानकिवर" की प्राण पियारी जपत रहत नित सीता सीता॥ ५॥ पद रेखता--सुकृत मिथिलेश के जागे। सहायक देवगण लागे। चले सुख सिन्धु उमड़ाई। निरखि शशिमुखि सुताजाई॥ सुनयना प्राचीदिशि पावन। उदय यह विधु कियो भावन॥ जगत में छाई उजियारी। गई त्रय ताप हियहारी॥ सुधामय लोक सब नीके। जनम मरणादि हरि लीने॥ बधाई बज रही घरघर। सकल मिथिलापुरी अन्दर॥ न याजक कोई मिलते हैं। अयाचक सब निकलते हैं। बजे पुर व्योम में बाजे। रसिक आनन्द में गाजे॥ "मधुपअलि" सबको कर लीजै। सदा आनन्द सुख दीजै॥ ६॥

सुनैनारानी बजत बधाई तेरे द्वार री। प्रगटी सुता सुलक्षणि सुन्दरि, मिथिला अवध सिंगार री॥ रघुकुल तिलक द्वार तेरे अइहैं भूपति मुनिन समाज री। "अग्रअली" की स्वामिनि प्रगटी,रसिकन हिय अनुराग री॥७॥ भले दिन जन्म लियो सुखदानी। निरखि बदन सुखसदन कुँवरिको, मगन भये नृप रानी॥ सकल सिद्धि सम्पदा पदारथ, मुक्ति द्वार अरुझानी। जनकपुरी में कोइ न सम्हारत रूप दरश मतिसानी। सकल सराहत भाग्य जनक के, जीवन सुफल प्रमानी। 'कृपानिवास' अली की स्वामिनि, शोभा नैन समानी॥८ जनकलली जू को सोहिलो गाऊँ। धन्य जनक धनिरानी सुनैना, निरखि लली मुख दृगन जुड़ाऊँ॥ या कन्या कुल प्रगट कियो है, सुर नर मुनि याको सुमिरत नाऊँ। "हरि

सहचरि'' बारव तन मन धन, भक्ति बधाई नित नइ गाऊँ ॥ ६ ॥ बाजे बाजे बधाई आज जनकपुर रंगभरी । रानी सुनैना बेटी जाई आज सुदिन शुभ योग घरी ॥ भये मुदित सुर साधु भूमि द्विज, असुरन के शिर गाज परी। गोरे अंग रूपगुण राशी, दामिनि की द्युति दूरि करी ॥ घर घर गान करत पुर बनिता, मंगल घट प्रतिद्वार धरी । रुचिर बितान पुंग कदली तरु, रोपे सुमंगल द्रव्य भरी ॥ सजि सजियान विवुध नभ छाये, बरसत कुसुम लगाइ झरी । "रसिकअली" गावत सुरनायक, नाचत कोटिन इन्द्र परी ॥ १० ॥ नाचे नाचे नवेलो नारि नूतन नाच करे ॥ ताथेइ ताथेइ तरलताल गति, रतिपति प्रानहरे । विविध विलाश प्रकाश हासरस, जसभलभावभरे ॥ रीझिदेत मिथिलेश महारानि, मुक्तामाल गरे । " युगलानन्य" मोहनीमूरति, सियहियमाहिं धरे ॥११॥

मिथिला बजतबधइया सबहिंसुख वारिवारि जावै । योग लगन ग्रह वारसुखद सब, तिथिहु पक्षमधुमइया ॥ जनकबधू पुत्री भल जाई, कोटिचन्द्र छविछइया । त्रिविधवायु सेवत अनुकूली, पंचतत्त्व सुखदइया ॥ नाचहि गावहि देव बधूटी, सुरन सुमन वरषया । सिद्ध मुनिनि मिलि स्तुति सारत, दुन्दुभि गगन बजइया । जय जय जयति जनकजा बोलब, आनन्द अमित अघइया । ललिहि ललकि लखि अम्ब सुनैना दीनी भान भुलइया ॥ कुलगुरु सहित लखे मिथिलेशहु, पाये सुख अमितइया । जात कर्म नन्दी मुख श्राद्धहिं कोने हिय हरषइया ॥ सर्वस दान दिये सब काहुहि, कनक वसन मणि गइया । अन्न भूमि रथ हयगय गृहरथ, कन्या दान दिवइया । मृग मद केशर कुम्कुम चन्दन, बीथि न गन्ध सिंचइया । कनक थार भरि मंगल द्रव्यहिं, स्वर्ण कलश शिर लइया ॥ वृन्द वृन्द नव-नागरि प्रविशहिं, भूपभवन भलभइया । सोहिल गान करहिं पिकबैनी, मुनियन ध्यान छोड़इया ॥ जनकलली लखि बलि बलि जावैं, आरति करैं सुहइया । करि निछावरि निरखि लुभानी, बिगरी सुधि विसरइया ॥ आनन्द मगन जनकपुर बासी, कहै कौन कवितइया । "हर्ष" प्रेम पगि नाचहिं गावहिं, धनि धनि लोग लुगइया ॥ १२ ॥

बजत बधाई सरस सुखसार गृह गृह सोहिल सोहै । रानि सुनैना आनन्द वर्धनि. भूपभाग बहुविधि समृद्धनि । प्रगट सोहाई सिया सुकुमार, रतीरमा मनमोहैं ॥ मातु पिता सुखसिन्धु समाने, सर्वस देत खुलाय खजाने । हय गय धेनु बसन मणिहार, सुखमय सब कहँ जोहैं ॥ लक्ष्मीनिधि नवनेह विभोरे, अनुजाभाव रसहिं रसबोरे । लहत हृदय आनन्द अपार, उत्सव सुखहिं सुसोहैं ॥ सुर प्रसून बर्षहिं नभ तेरे, जयकहि दुन्दुभि देत सुखेरे । नाचहिं अप्सरा भाव सम्हार, सेवहिं सियछवि सोहैं ॥ तैसेहि भूमि पंच धुनि भाती, दधि केशर छिड़काहिं सुखमाती । लोग लुगाई नचैं सब बार, "हर्षम" दिविरस दोहै ॥ १३ ॥ चलो चलो री सहेली नृप महलन में । लक्ष्मीनिधि के भगिनि प्रगट भइ, छवि शृँगार सुख धवलन में ॥ उमा रमा ब्रह्माणि सुनीयत, आइ नचीं पुर अनलन में ॥ ऋषि मुनि वेद बखारब बखरे, आदि शक्ति मन अमलन में । देश देश के भूपति आये, भेंट